पाक्षिक

सारिका

वर्ष:२०; अंक:२६३

फ्रैंज़ काफ़्का विशेषांक

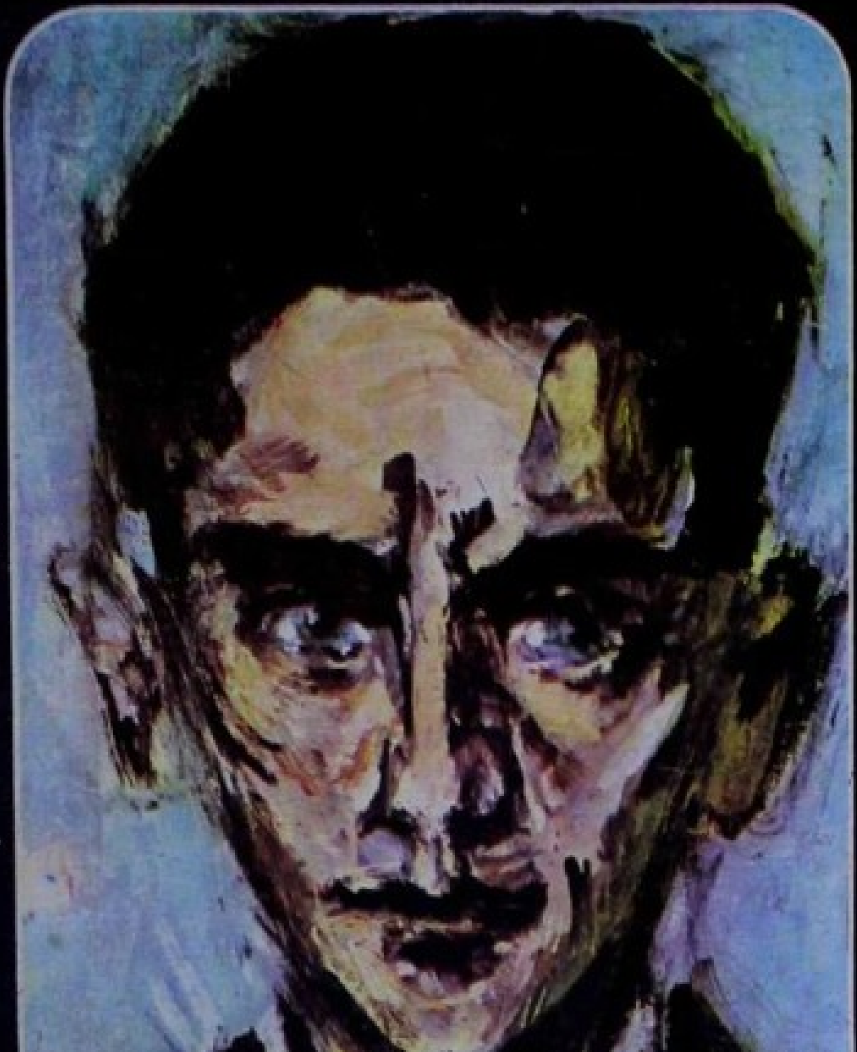

अकेलेपन के मसीहा का रचना-संसार

सारिका

कहानियों और कथा जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : 20; अंक : 263

1 से 15 जून, 1980

फ्रैंज़ काफ्का विशेषांक

काफ्का की लघुकथाएं

37. पेड़, अकस्मात सैर
40. राहगीर, गली में खुलती खिड़की
54. कानून के समक्ष, पक्का इरादा
55. नगर का कुल चिन्ह, गमन
57. घर पहुंचते हुए
67. परीक्षा

काफ्का की अन्य कथाएं

11. काफ्का और कानून
14. पिता के नाम पत्र
16. पहली नजर की लंबी दास्तान : **काफ्का के खत फैलिस के नाम**
18. मैं अपने ही शरीर के प्रति निराश होकर ऐसा लिखता हूं : **डायरी के कुछ पृष्ठ**

अन्य आकर्षण

8. साम्सा का सपना और काफ्का का शहर : **कन्हैयालाल नंदन**
12. काफ्का की अंतिम इच्छा : **माक्स ब्रॉड**
22. जिंदा और मुर्दा दर्द : **आभा दयाल**
24. चौथा यहूदी : **कैलाश बाजपेयी**
26. **काफ्का से गुस्ताव यानोख की बातचीत**
48. काफ्का के पात्र बहुत कम बोलते हैं : **लोठार लुत्से से कन्हैयालाल नंदन की बातचीत**
53. काफ्का के कृतित्व में आशा और ऐब्सर्ड : **अल्बेयर कामू**
59. फ्रैंज़ काफ्का के प्रति (कविता) : **एडविन मूर**
69. काफ्काई अंधेरे में जूझती आत्मपीड़ा : **दिनेश शाकुल**
70. चालीस साल लंबे अकेलेपन का दर्द : **बलराम**

मील का पत्थर

29. नचिकेता होने की नियति : फ्रैंज़ काफ्का : **राजेंद्र यादव**
35. चीन की दीवार

काफ्का की अन्य कहानियां

42. फैसला
50. डागदर बाबू
56. दंपति
60. शराबी से बातचीत
62. **किस्सा जोसेफाइन गानेवाली का... उर्फ चूहों की दुनिया**

इनके अतिरिक्त

6. पाठकों का पन्ना.

संपादक
कन्हैयालाल नंदन

मुख्य उप-संपादक :
अवधनारायण मुद्गल

उप-संपादक :
रमेश बत्तरा, सुरेश उनियाल
बलराम, अरुण वर्द्धन

सज्जा : रवि शर्मा

पाठकों का पन्ना

प्रधानमंत्री भी दुखी

'सारिका' के अप्रैल (प्रथम) अंक में **जरिया-नजरिया** के अंतर्गत आपने एक प्रश्न उठाया है, जो देश के हर शरीफ नागरिक के अंदर उठता है. विचार, शरीफ इंसान के अंदर ही क्यों उठता है? इसलिए कि आम जन के अनुसार देश में पुलिस-कानून मात्र शरीफ लोगों के लिए हैं और वही लोग गलत करने से डरते भी हैं. गुंडों और बदमाशों के लिए तो कानून होता ही नहीं, क्योंकि शत-प्रतिशत न सही, इतना तो हर नागरिक जानता है कि पचास प्रतिशत गुंडागर्दी और शैतानी में किसी न किसी तरह से पुलिस का हाथ रहता है. इसी संदर्भ में हाल ही में गोरखपुर बस स्टेशन पर घटित घटना की चर्चा करना असंगत न होगा, जहां एक ग्रामीण परिवार की जवान लड़की बस का इंतजार कर रही थी. तभी दो सिपाही आये. उससे उल्टे-सीधे सवाल करने लगे, साथ ही मजाक भी करते. भाई-बहन पर आरोप लगा रहे थे कि सालों का कुछ चक्कर है, इसलिए कहीं भाग रहे हैं और कहते हैं कि दवा कराने आये थे और अब घर जा रहे हैं. वह भाई-बहन हर तरह की सफाई पेश कर रहे थे, लेकिन सिपाहियों के अंदर जवान लड़की देखकर कुछ दूसरे ही विचार उठ रहे थे. इस कारण उन्हें सब झूठा लग रहा था. तभी उनमें से एक सिपाही ने कहा, "तुम दोनों मेरे साथ चौकी चलो." यह सब लीला पास ही से एक मिलिट्री का जवान भी देख रहा था. जब सिपाही उन दोनों को ले जाने लगा तो उसने विरोध किया, "आप लोग इसे क्यों ले जा रहे हैं." बात बढ़ते-बढ़ते मार-पीट तक आ गयी और वहां पुलिस का एक दीवान आ गया और जब उसने देखा, बात बहुत बिगड़ रही है तो उसने सिपाहियों की तरफ से माफी मांगकर बात को किसी तरह से समाप्त किया. और वह भाई-बहन पुलिस का शिकार होते-होते बच गये. इसीलिए तो हमारे देश की प्रधानमंत्री भी पुलिस की कार्रवाहियों से दुखी हैं, लेकिन मुझे विश्वास है कि आप जैसे निर्भीक संपादक सच्चाइयों को जब सामने रखेंगे तो सारे देश को सोचने पर मजबूर होना पड़ेगा और जब सभी चिंतित होंगे तो परिणाम अच्छा ही निकलेगा.

▣ **राजेंद्र परदेसी, बिधुनगर, भोजपुर**

संपादकों की संस्कृति

आप डंडे की संस्कृति की बात करते हैं और हमें याद हो आयी है खोखले आदर्शों में जीने वाले और नेता की तरह आदर्शवादी भाषण देने वाले संपादकों की संस्कृति की.

▣ **सिद्धेश्वर, करबिगहिया, पटना**

पाठक चतुर सुजान

साक्षात्कार के अंतर्गत शिवानी से लंबी बातचीत पढ़ी और बेहद पसंद आयी, क्योंकि जो प्रश्न साक्षात्कर्त्ता के मन में उभरे, लगभग वे ही प्रश्न एक अर्से से मेरे मन में भी एक पाठिका की हैसियत से रहे हैं.

दरअसल, एक सुरम्य वातावरण और मोहक दृश्य खींचकर उसकी भूल-भुलैया में पाठकों को उलझाये रखने की उनकी कला अपूर्व है, परंतु कुछ उपन्यास व कथाएं पढ़ने के बाद ही उनकी यह चतुराई सजग पाठकों की पकड़ में आ जाती है.

▣ **कु. पूरबी विश्वास, आगरा**

सुलझी हुई बातचीत

अप्रैल (द्वितीय) अंक पढ़ा. शिवानी से बातचीत काफी सुलझी हुई लगी. उनका, अलग से एक परिवेश की कहानियों को दोहराना काफी खलता है. जो बात **विषकन्या** में थी, वह **सुरंगमा** या **कृष्ण कली** में नहीं या फिर ऐसा समझ लीजिए कि वे एक पात्र विशेष, स्थान विशेष और भाषा विशेष के मोह में पड़कर बदलाव की सहज मानवीय या लेखकीय प्रवृत्ति को नजरअंदाज किये जा रही हैं.

रमेश बंधु की **ग्रामवधू** ने सोचने पर बाध्य किया कि वास्तव में एक नारी का प्रतिशोध, ऐसे भी अपने शरीर के साथ अन्याय करके और दूसरों की कृपा के बदले अपना प्रेम प्रदर्शित करने से दर्शाया जा सकता है. **तुम हाइडलबर्ग ज्यादा ही बार जाते हो** ने अपने देश के परिवेश को बखूबी दर्शा दिया है.

▣ **सुरेश गुप्ता 'सुरेश', भोपाल**

क्यों नहीं माना जाता

शिवानीजी का **साक्षात्कार** पढ़ा. शिवानी का लेखन साहित्यिक कदाचित दो-तीन कारणों से नहीं है. एक तो वह राजनीतिक बदबू से दूर है. दूसरे, उसका विषय सीमित है. शायद वह पौराणिक विषयों को नये परिप्रेक्ष्य में नहीं ढाल रहा. नहीं तो क्या कारण है कि जिसकी भाषा, शैली, चरित्र-चित्रण सभी कुछ इतना सशक्त हो, वह साहित्यिक कोटि का न माना जाये? क्या इसलिए कि वह महिला है और कोई अशिष्टता उनके लेखन को छू नहीं पायी है? शिवानीजी की संस्कृतनिष्ठ प्रांजल शैली आधुनिक हिंदी भाषा की उपलब्धि क्यों नहीं मानी जाती? उनके चरित्र को मूर्तिमान कर देने के कौशल पर गर्व क्यों नहीं किया जाता? यदि ये दोनों बातें दुराग्रह हैं तो भी निवेदन है कि उन्हें एक समर्थ आंचलिक कथाकार क्यों नहीं माना जाता? कुमाऊं के जन-जीवन को जितनी संवेदनशीलता से उन्होंने पाठकों तक पहुंचाया है, वही क्या प्रशंसनीय नहीं है?

▣ **संतोष सक्सेना, खंडवा (म. प्र.)**

पाठकों के नाम

विद्युत आपूर्ति में अप्रत्याशित कटौती के कारण हम 'सारिका' का जून, अंक : दो प्रकाशित नहीं कर पा रहे हैं. इसका हमें खेद है. अपने पाठकों, सहयोगी लेखकों तथा विज्ञापनदाताओं से क्षमा मांगते हुए हम कोशिश कर रहे हैं कि 'सारिका' के आगामी अंक यथासमय आप तक पहुंचते रहें. सं.

पाठकों का सवाल : बहस

नाली बरकरार है तो दूषण होगा

सृजनात्मक साहित्य और पाठकों के बीच बढ़ती जा रही दूरियों को रेखांकित करके राकेश वत्स ने तत्संबंधित सोच को पुनः कुरेद दिया है. उनकी यह मान्यता कि 'पाठक तो है, पर सवाल उनके टेस्ट को सुधारने का है' अपने आप में एक तथ्य अवश्य है, लेकिन इसीके साथ एक जुड़ा हुआ सवाल यह भी है कि टेस्ट सुधारने की जिम्मेदारी किसकी है? लेखक की या समाज की?

और इसी प्रश्न के साथ यह प्रश्न भी संबद्ध दिखाई पड़ता है कि पाठकों के टेस्ट को बिगाड़ने का कार्य किस तत्व ने किया है? निश्चय ही, उस तत्व को समाप्त किये बिना पाठकों का टेस्ट सुधारने की कल्पना व्यर्थ है, लेकिन उस फुटपाथी और सस्ते साहित्य के विरुद्ध कोई कानून इसलिए नहीं बनाया जा सकता कि यदाकदा अपनी काम-विकृति को उद्‌घाटित करने के लिए लिखी जाने वाली कई तथाकथित साहित्यिक कृतियों पर भी वह कानून लागू हो जायेगा. अस्तु, इस षड़यंत्र में लाभ-लोभी प्रकाशक, कर-पात्री सरकार और आत्मरति-रत लेखकों का पूरा वर्ग शामिल है.

इनमें प्रकाशक का विशेष दोष नहीं है, क्योंकि वह तो व्यवसायी होता ही है. उसे अपने व्यापार से मतलब है. वह साहित्य की श्रेष्ठता अथवा निम्नता पर ध्यान न देकर अपने बाजार पर ध्यान देता है. कुछ अपवादों को छोड़कर सरकार की दशा हमेशा से यही रही है. अंग्रेजी राज्य में जनमानस को कुंठित करने वाले ऐयारी और तिलिस्मी उपन्यास खुलेआम बिकते थे, जबकि राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करने वाली कृति 'सोजेवतन' जब्त कर ली गयी थी. आज भी यही स्थिति है. देश-चिंता से युक्त रचना को व्यवस्था-विरोधी साहित्य कहा जाता है और राष्ट्रीय चरित्र को मिटाने वाली कृतियां धड़ल्ले से बिकती हैं. फिर, अनेक समझदार लेखक ही जब 'काम' को जीवन का अनिवार्य अंग मानने का बहाना करके विकृत रचनाओं की हिमायत करने लगे हैं तो 'अंगड़ाई' और 'गर्म-कहानियां' की निंदा व्यर्थ है.

तब पाठक का टेस्ट कैसे सुधरेगा? जब तक नाली बरकरार है, दूषण रहेगा. आप बगल में बनाते रहिए स्वच्छ नहर! उसका जल भी दूषित हो जायेगा.

वस्तुतः मानवीय वृत्ति का सामान्य झुकाव अविद्या की ओर होता है. एक ही साथ एक मंच पर भड़ैती हो रही हो, दूसरे मंच पर 'गोदान' का अभिनय हो रहा हो तो दूसरे मंच के दर्शकों की संख्या पहले मंच के दर्शकों से कम होगी. अतः दर्शकों को दूसरे मंच से जोड़ने के लिए जरूरी है कि वहां से भड़ैती वाला मंच हटा दिया जाये.

यहां एक प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या कारण है कि तिलिस्म और ऐयारी के युग में भी प्रेमचंद अपने पाठकों के अपेक्षाकृत अधिक निकट थे? इसमें संदेह नहीं कि प्रेमचंद की रचनात्मक शक्ति के कारण ही ऐसा था, पर यह भी एक महत्वपूर्ण सत्य है कि उस युग के पाठक सांस्कृतिक दृष्टि से इतने दरिद्र नहीं थे. आज परैश्वर्यजीवी संस्कृति का इतना विस्तृत व्यामोह हमारी जनता के चरित्र पर छाया हुआ है कि देश का भविष्य खतरे में दिखाई पड़ता है. सांस्कृतिक पतन दुर्बल राष्ट्रीयता का द्योतक है और दुर्बल राष्ट्रीयता के भयंकर परिणाम गुलामी के रूप में यह देश बहुत बार भोग चुका है.

आज विदेश का आकर्षण कुछ अधिक ही है हमारे लिए. आज हम विदेशी तत्वों की ओर जरूरत से ज्यादा अपनी जुबानें लपलपा रहे हैं. भाषा हमें विदेश की अच्छी लगती है, वस्त्र हमें विदेश के भाते हैं. यहां तक कि विदेश की तारीफ के चक्कर में अपने देश की खुली निंदा हम करते हैं और हमें शर्म तक नहीं आती. मैं समझता हूं, अपने देश के प्रति इतनी उपेक्षा शायद ही कहीं होगी. और तो और, साहित्य भी हम विदेश का ही अधिक पढ़ते हैं. विदेश के नाम पर अनेक स्तरहीन रचनाएं हिंदी में अनूदित होती हैं और उनके आगे हम अपनी भाषा की अनेक उत्कृष्ट रचनाओं को तुच्छ समझते हैं. लुब्बो-लुबाब यह, कि हमारा दृष्टिकोण ही विदेशपरक हो गया है. अतः उसका प्रतिरूप जिस देशी साहित्य में हमें अधिक मिलता है, हम उसी ओर अधिक झुकते हैं. आज का नवयुवक ही नहीं, पढ़ा-लिखा प्रौढ़ भी गुलशन नंदा को पढ़ता है, अमरकांत को नहीं.

अतः दोष सिर्फ रचनाकार का नहीं है, हालांकि राकेश वत्स यही मानते हैं. और यह बात अंशतः सत्य भी है कि आज के रचनाकार में पाठकों को बांधने की क्षमता नहीं है या परिपक्वता नहीं है, लेकिन मैं समझता हूं, बीच की पीढ़ी ने साहित्य में जो दुरूहता उत्पन्न कर दी थी, उसी के कारण पाठक वर्ग बिचक गया है और आज उसी की धारणा बनी हुई है कि आज का लेखक आम आदमी की जिंदगी से कटा हुआ है, परंतु इन दिनों युवा लेखकों की जो रचनाएं प्रकाशित हो रही हैं, उनका अधिकांश सामान्य जनता के दुख-दर्द से अनुप्राणित है और भाषा की दृष्टि से भी वह सर्वग्राह्य है, लेकिन पाठकों के पूर्वाग्रह को हम बिना किसी सांस्कृतिक चेतना के नहीं तोड़ सकेंगे.

और लघुपत्रिकाओं पर दोषारोपण उचित नहीं प्रतीत होता. अपवादों को यदि छोड़ दिया जाये तो यह मानना पड़ेगा कि लघुपत्रिकाओं ने हमें कुछ ऐसी रचनाएं दी हैं, जो जनता से जुड़ने की पूरी क्षमता अपने भीतर रखती हैं.

परंतु हिंदी के पाठकों ने जिस सीमा तक अपने भौतिक जीवन में उन्नति की, उस सीमा तक अपने मानसिक धरातल को विकसित नहीं किया. आज का आदमी फैशन की नयी से नयी वस्तु का ज्ञान रखता है, पर नये साहित्य का उसे क ख ग भी नहीं मालूम है. क्यों?

इसके लिए एक काम जरूरी है कि सृजनात्मक साहित्य को फुटपाथ पर भी बेचा जाये. पाठकों के बीच यदि पहुंचना है तो भव्य इमारतों से बाहर आने में शर्म नहीं आनी चाहिए.

▣ डा. अब्दुल बिस्मिल्लाह, वाराणसी

साम्सा का सपना और काफ्का का शहर

असल में काफ्का को पढ़ना एक भयंकर यातना-सुख की यात्रा पर निकलना है (उसे न पढ़ना उससे भी बड़ी यातना का शिकार बना रह जाना है) और काफ्का को पढ़कर उसके शहर प्राहा की यात्रा करना यूरोप के इस बेहद खूबसूरत शहर पर उदासी की एक पारदर्शी झिल्ली मढ़कर उसे देखना है. काफ्का उस शहर को देखने का आपका नजरिया बदल देता है. फिर आपका मन प्राहा के गिरजाघरों और वास्तु मीनारों के 'सौ शिखरों' में नहीं अटकता (दायें) वेंसेस्लास स्क्वायर या ओल्ड टाउन स्क्वायर के इतिहासों पर नहीं रमता, वल्तावा नदी के ऊपर की पहाड़ी पर से शान के साथ नदी के पार के शहर को निहारते 'प्राहा महल' (ऊपर) को नहीं निहारता, शहर की आत्मा के साथ भटकता है. काफ्का की जबान में बोलें तो 'यह शहर नहीं है, यह तो समय के महासमुद्र की तलहटी की एक ऐसी दरार है, जिस पर जले हुए सपनों और

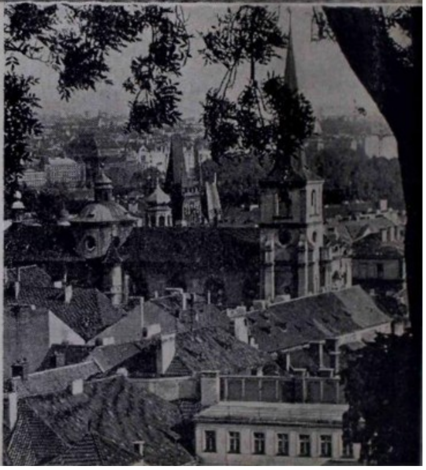

अरमानों के पत्थर ढेर लगे पड़े हैं. जहां हम सब गोताखोरी के तौर पर टहल मारते रहते हैं. यह टहल कदमी दिलचस्प है, लेकिन एक वक्त के बाद हर गोताखोर की सांस फूलने लगती है और उसे ताजी हवा के लिए सतह पर आना पड़ता है, वरना फेफड़े फट जायें.' काफ्का को अंततः फेफड़ों की ही बीमारी ले गयी. टी. बी. में फेफड़े इस कदर सड़ गये थे कि दर्द को दबाने के लिए मार्फीन का इंजेक्शन ही एकमात्र चारा रह गया था. वियना का इलाज भी काम न आया. डा. क्लापस्टाक से काफ्का कहता, "मुझे मार दो, हत्यारों की तरह तड़पा क्यों रहे हो?" और डॉ क्लापस्टाक उसे मार्फीन का इंजेक्शन देकर सुला देते. एक दिन ऐसा आया, जब वह इंजेक्शन लेकर सोया और फिर हमेशा के लिए सोया रह गया.

मैं प्राहा में पूरे पांच दिन रहा और किसी भी दिन काफ्का के 'जले हुए सपनों' वाले बिंब ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा. चार्ल्स ब्रिज पर चलते हुए उसके दोनों ओर बनी मूर्तियों के अपने अर्थ और मिथकीय इतिहास हैं. वे अर्थ और उनमें निहित मिथकीय इतिहास को मेरे चेक मित्र मिस्टर ज्बाइनेक पोलीव्का पूरे उत्साह के साथ समझाते रहे, लेकिन मेरे जेहन में काफ्का की व्याख्या इस कदर चस्पां हो गयी थी कि 'पूर्वाग्रह'-सा बन गया था. उस पुल पर एक अप्सरा मूर्ति है, जो 'वर्जिन' की मूर्ति के पीछे अपनी नाक को अंगुलियों से थामे है. काफ्का ने मूर्ति को देखा तो बोले, "यह मूर्ति तो कुछ इस तरह व्यवहार कर रही है, जैसे स्वर्ग में दुर्गंध ही दुर्गंध भरी हो. लेकिन स्वर्ग की अप्सरा है, यहां, इस दुनिया की हर चीज उसे बदबूदार ही लगती होगी."

उन्हें याद दिलाया गया कि जिस मूर्ति के साथ उस अप्सरा की मूर्ति है, वह दुनियावी नहीं, परमात्मा यीशु की मां है. काफ्का की व्याख्या सुनिए कि मातृत्व से बढ़कर कोई भी चीज दुनियावी नहीं हो सकती. यह मातृत्व की ही देन है कि सृजन की पीड़ा के जरिये आशा की एक नयी किरण फूटती है और उस नयी आशा-किरण के जरिये हमारी इस धूलभरी दुनिया को खुशियों की नयी संभावनाएं दस्तक देती दिखायी देने लगती हैं.

एक चिंतक के रूप में धर्म को रूढ़ि की हदों से निकालकर आस्था की अनवरत लड़ी में पिरोकर पेश कर देने वाला यह काफ्का अपनी घटाटोप निराशा के बीच भी मुझे इसीलिए आकर्षक लगता रहा है. कहते हैं कि दांते के बाद अकेला रचनाकार है, जिसके रचे हुए संसार को उसीके नाम के विशेषण से जाना जाता है. समूचा यूरोप 'दांतेएस्क' से परिचित था, काफ्का ने 'काफ्काएस्क' दिया, जिसकी जद में जाते एक दहशत होती है, लेकिन उस दहशत की दुनिया की सच्चाई आपको छूटने नहीं देती. वह अपने अस्तित्व की प्रतिष्ठापना के लिए छटपटाती हुई बेचैन दुनिया है, उदासी की घनी पर्तों से बुनी हुई. . .जिसके न होने को न तो इंकार किया जा सकता है और न उससे बचकर रहा जा सकता है. मेरे जर्मन दोस्त डा. लोठार लुत्से कहते हैं कि काफ्का कभी लोकप्रिय नहीं हो सकता, क्योंकि अंतर्मन में झांकने का चाहे कितना भी मसाला काफ्का देता हो, जिस रास्ते से वह गुजरता है, वह रास्ता तो भयंकर अंधी गुफाओं से होकर निकलता है. कौन चाहेगा खुशी-खुशी उन अंधी गुफाओं में घुसना? मैं अपने मित्र की इस बात से पूरी तरह सहमत होने के लिए इतना और जोड़ना चाहता हूं कि '. . .लेकिन अगर एक बार उन अंधी गुफाओं से होकर कोई गुजर गया तो उसने उन गुफाओं की गूंज से फिर कभी पीछा छुड़ाना नहीं चाहा. वह गूंज उसके सर चढ़कर बोलती है. यही वह गूंज थी जो मुझे प्राहा ले भी गयी थी और वहां उसके चप्पे-चप्पे में मेरे सर चढ़कर बोल रही थी. समूचा शहर मेरे लिए एक साहित्यिक तीर्थयात्रा बनकर रह गया.

जिस दिन काफ्का के मकान को देखने पहुंचा तो देखकर दंग रह गया कि ये मकान है या कोठरियां. तिंस्की गिरजाघर के पिछवाड़े की एक संकरी गली, जो शायद गिरजाघर का ही एक हिस्सा रही होगी, उस गली में छोटी-छोटी कोठरियों की पांत. उसी पांत में से एक कोठरी काफ्का की भी है. बाहर उसके नाम की पट्टी लगी है.—"फ्रैंज काफ्का' और अंदर उसका एक रेखाचित्र फ्रेम किया हुआ लगा है. चित्र के बगल में उसी दीवाल पर यूरोप के भूमध्यसागरीय इलाके का एक नक्शा है. नक्शे में इटली को एक मानवाकृति के हाथ का रूप दे दिया गया है, जिसमें विश्व का प्रतीक एक ग्लोब थमाया हुआ है. घर के पिछवाड़े की तरफ की खिड़की गिरजाघर के आंगन में खुलती है. आज के रहन सहन के स्तर को देखते हुए काफ्का की वह कोठरी निहायत मामूली कोठरी लगती है. सोचकर ताज्जुब होता है कि कैसे रहता होगा काफ्का इस दड़बेनुमा घर में. लेकिन अगर काफ्का के चिंतन को ध्यान में रख कर देखें तो वह 'मेटामॉर्फासिस' के साम्सा का उपयुक्त स्थान लगने लगता है. एक व्यापारी ग्रेगोर साम्सा, कैसे एक महाकाय तिलचट्टे में बदलकर किस भयंकर मानसिक यातना में मरता है, वहां खड़े-खड़े महसूस होने लगता है. तमाम सारी टांगों पर रेंगता हुआ एक वृहदाकार तिलचट्टा अपनी कोठरी से बाहर निकलता है और परिवार के लोगों की हिकारत भरी आंखों का शिकार वह फिर से उसी कोठरी में बंद कर दिया जाता है, जहां अपमानित और निराश वह रात भर सो नहीं पाता और अंततः उसके प्राण उसका साथ छोड़ जाते हैं.

गुस्ताव यानोख ने एक बार काफ्का से पूछा, "कहानी का नायक साम्सा कहीं मुझे काफ्का का प्रतिरूप लगता है. उसके नाम में भी मात्राओं सहित पांच अक्षर हैं काफ्का में भी. . ."

—काफ्का का जवाब था, "सैम्सा सिर्फ काफ्का नहीं है और मेटामॉर्फासिस कोई आत्मस्वीकृति नहीं है, हां, एक तरीके से उनमें आत्मस्वीकृतियों की छाया ढूंढ़ी जा सकती है. . .अपने परिवार में कीड़ों मकोड़ों को ढूंढ़ना. . . बड़ा-नाजुक मसला है. खैर छोड़ो!"

असल में मेटामॉर्फासिस एक सपना है. एक भयंकर सपना, जो कि विचार से आगे की यात्रा करता है. एक सच, जो विचार की दुनिया में सामने से छिटक जाता है, सपने में आकर सिमट जाता है. कितना भयानक सच है, आदमी का

तिलचट्टे में बदलना और उसका अनवरत यंत्रणा, तिरस्कार और अपमान में जीते हुए घुटकर एक दिन दम तोड़ देना. ऐसा भयानक सच दहशत पैदा करता है, लेकिन काफ्का अपने पूरे लेखन में हमें ऐसे भयानक सच का साक्षात्कार कराता है. बल्कि 'साक्षात्कार' शब्द हल्का है. . .काफ्का वह सब आपके आसपास बुन देता है और ऐसे ढंग से बुन देता है कि आप उस सच का एक हिस्सा भी होते हैं और दृष्टा भी. ऐसी बुनावट महज कल्पनाओं की उपज नहीं हुआ करती. काफ्का ने जो जिंदगी जी है, जो कुछ भोगा-देखा है, वही सब कुछ है उसका लेखन. असल में काफ्का के पास यथार्थ और अवचेतन की तस्वीरों का आपस में एक हो जाना मामूली बात थी. साठ साल पहले उसमें किसी को आत्मपीड़क दुःस्वप्नों की प्रतिछवि भले दिखायी देती रही हो, लेकिन अब उसकी मृत्यु के पचास-पचपन साल बीत जाने के बाद हिटलर का जर्मनी, द गाल का अल्जीरिया, स्तालिन का रूस और वरवोर्ड का दक्षिण अफ्रीका देख लेने के बाद लगता है जैसे वह काफ्का नहीं, उसके अंदर कोई नजूमी, भविष्य वक्ता बैठा बोल रहा हो. वर्तमान के प्रति अंदर से पूरी तरह निराश काफ्का भविष्य की कंदीलों में रोशनी उंडेलना चाहता था. वर्तमान की शहादत से भविष्य में रंग भरना चाहता था.

▣

1922 में जब अंग्रेजों ने महात्मा गांधी को कैद कर लिया तो काफ्का ने कहा, "अब यह बहुत साफ हो गया है कि गांधी का आंदोलन जीतेगा. इस गिरफ्तारी से उनकी पार्टी को और बल मिलेगा. बिना शहीद हुए तो कोई आंदोलन चलता नहीं. शहादत के बिना आंदोलन भोथरे होकर भविष्य की झोली में भर-भर लूटने वालों का एक जत्था भर रह जाता है. हरहराती हुई नदी एक पोखर में बदल जाती है, जिसमें भविष्य के सारे विचार सड़ने लग जाते हैं. दुनिया की निजी स्वार्थों से ऊंची तमाम चीजों की तरह विचार को भी जिंदा रहने के लिए व्यक्तिगत कुरबानी की दरकार होती है."

कहते हैं, काफ्का ज्यादा नहीं बोलता था. नपातुला बोलता था. जबान से ज्यादा आंखों से बोलता था. घनी काली भौंहों के नीचे उसकी भूरी आंखें उसका अंतर और बाह्य दोनों बोलती थीं. आंखों से बचाखुचा भाव चेहरे की मांसपेशियों की हरकत से व्यक्त हो जाता था. मत्था संकरा था, लेकिन उस पर पड़े हुए बल कई बार एक एक पन्ने की इबारत से ज्यादा कुछ कह जाते थे. कभी-कभी तो हाथ और कंधे भी बोलते थे और जबान की बनिस्पत ज्यादा प्रभावशाली ढंग से बोलते थे. उसकी यह शारीरिक भाषा शब्द की पुनरुक्ति नहीं हुआ करती थी, एक भिन्न प्रकार की अभिव्यक्ति थी, जिसमें कभी-कभी हल्की-सी मुस्कान मुहावरे का काम करती थी. कैसी विडंबना है कि शब्द और शरीर की भाषा का ऐसा धनी रचनाकार दोनों के प्रति आश्वस्त नहीं था. शरीर से हमेशा वह बेहद निराश रहा. 28 साल की भरी जवानी में कहता है. "मेरी प्रगति के रास्ते में सबसे बड़ा रोड़ा मेरा शरीर है. मैं पूरी तरह जान गया हूं कि ऐसे शरीर से कुछ भी नहीं हासिल कर सकता." काफ्का का कहना था कि अंदर की वैचारिक ऊष्मा को बरकरार रखने के लिए हड्डियों पर जितनी चर्बी होनी चाहिए, उसका एक अंश भी तो नहीं है शरीर में.

वह शरीर किसी तरह 40 साल तो उसका साथ दे सका, बाद में जवाब दे गया. उन चालीस सालों में काफ्का ने जो कुछ जिया, उसने सिवा उसे तोड़ने के और कुछ नहीं किया. परिवार में पिता से कभी पटरी नहीं बैठी. अपने पिता को लिखा उसका खत मुझे डा. जानसन के लार्ड चेस्टरफील्ड को लिखे खत की व्यंजनाओं में घुमाता रहा है. एक पत्र अंग्रेजी का कालजयी दस्तावेज है तो दूसरा जर्मन भाषा का. फैलिस को समर्पित उसका प्यार कभी प्रतिदान न पा सका; तीन-तीन सगाइयां टूटीं, शादी की नौबत कभी नहीं आयी. मूल्यों का टूटना देखता ही आ रहा था कि प्रथम विश्वयुद्ध ने उसे और तीव्र कर दिया. चेकोस्लोवाकिया का शासकीय जर्मन तबका जिस तरह व्यवहार करता था. (जिस तरह के कानून का शासन था, उसके बारे में उसकी प्रतिक्रिया अगले पृष्ठ पर ही देखने को मिल जायेगी) उससे काफ्का को वितृष्णा थी. अपने ही लिखे को छपाने को तैयार नहीं था और असल में उसके मित्र माक्स ब्राड ने अगर उसकी वसीयती हिदायत की अवहेलना न की होती तो काफ्का दुनिया की निगाह से ओझल हो जाता.

आज दुनिया की निगाह में काफ्का ऐसा चढ़ा हुआ है कि कोई भी पढ़ने-लिखने वाला इंसान मध्य यूरोप की सबसे पुरानी यूनिवर्सिटी प्राहा का चार्ल्स विश्वविद्यालय भले न देखना चाहे, लेकिन काफ्का का घर जरूर ढूंढ़ता है. भीड़ लगी रहती है दर्शकों की वहां पर.

▣

रात पानी बरस गया था, बदली अभी छंटी नहीं थी. इसलिए सर्दी, मौसम और मेरे दोनों के हिसाब से कुछ ज्यादा ही थी. मित्र पोलीव्का ने इसका जिक्र किया तो मुझे काफ्का के शब्द याद आ गये. उसे अपने फेफड़ों को सर्दी से बचाना होता था. अक्सर बुखार हो जाता था. एक मित्र ने पूछा, "आप को लगता है सर्दी है, शरीर जल रहा है."

काफ्का अपनी मारक फीकी मुस्कान से मुस्कराया और बोला, "नहीं, मेरा शरीर गर्मी सहेज नहीं पाता, इसलिए मैं हमेशा जलता रहता हूं."

पोलीव्का साहित्यिक रुचि के आदमी थे. बोले, "काफ्का अपने जीवन भर जला और अब भी देख रहा हूं कि आपके अंदर जल रहा है."

सच, उसको मरे लगभग साठ साल होने को आ रहे हैं; लेकिन उसकी आग बुझने को नहीं आ रही. उसका हर शब्द हजारों पढ़ने वालों के दिलों में आग बन जाता है.

प्राहा उस समय सचमुच मुझे काफ्का की उदासी ओढ़े हुए लग रहा था.

कन्हैयालाल नंदन

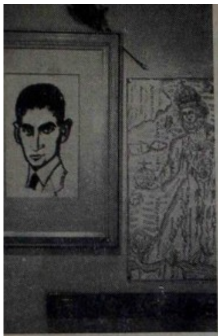

कानून और काफ्का

'हम तलवार की नोक पर टिके हैं!'

● फ्रैंज

ऊपर : काफ्का के प्राहा स्थित निवास का अंदरूनी हिस्सा, जहां उसका एक रेखाचित्र और साथ में यूरोप के दक्षिणी हिस्से का एक नक्शा लगा हुआ है, नक्शे को सरसरी निगाह से देखने पर एक आकृति नजर आती है जिसमें इटली को उस आकृति के हाथ का रूप दे दिया गया है. दायें : काफ्का के समय का प्राहा

बदकिस्मती से हमारे कानूनों की आम लोगों को जानकारी नहीं है. वह अभिजात वर्ग के कुछ लोगों, जो हमारे ऊपर राज्य करते हैं, का राज है. हमें पूरा विश्वास है कि इन सनातन कानूनों का नियमपूर्वक पालन किया जाता है. परंतु फिर भी कानूनों द्वारा शासित होना, जिनसे हम अनभिज्ञ हैं, कितना कष्टदायक है. मैं यहां कानून की अनेक संभावित व्याख्याओं के बारे में नहीं कह रहा तथा उन प्रतिकूल परिस्थितियों की बाबत बात नहीं कर रहा जो केवल व्याख्या करने की स्थिति से उत्पन्न होती हैं. उनकी व्याख्याओं में शताब्दियां लगी हैं. और अब तक ये व्याख्याएं ही कानून का रूप ले चुकी हैं. फिर भी इनकी व्याख्या की कुछ गुंजाइश अभी है चाहे वह कितनी ही सीमित क्यों न हो.

ये प्रत्यक्ष कानून वास्तव में मात्र अटकलबाजी से अधिक कुछ भी नहीं हैं. एक रिवाज के अनुसार उनका अस्तित्व है और रहस्य के रूप में उन्हें अभिजात वर्ग को सौंपा हुआ है. परंतु यह एक पुराने रिवाज से जिसे समय ने सत्ता प्रदान की है, अधिक कुछ भी नहीं और न ही हो सकता है, क्योंकि इन कानूनों का स्वरूप इसी में निहित है कि इनके अस्तित्व को भी गोपनीय रखा जाये.

यह वर्तमान स्थिति, इस समय चाहे कितनी भी विषादपूर्ण क्यों न लगती हो, केवल इस विश्वास से आलोकित है कि एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा जब दोनों—परंपराएं और हमारा उनका अध्ययन, सुख की सांस लेते हुए, एक ही नतीजे पर पहुंचेंगे, जब सब कुछ स्पष्ट हो जायेगा, और जब अंततः कानून आम लोगों का हो जायेगा तो अभिजात वर्ग विलुप्त हो जायेगा. यह अभिजात वर्ग के प्रति किसी प्रकार की घृणा के कारण नहीं कहा जा रहा. . .बिल्कुल नहीं. .. हम लोग तो अपने आपसे घृणा करने पर तुले हुए हैं, क्योंकि हम अभी तक अपने आपको कानून के योग्य नहीं समझते.

इस विषय का वर्णन एक प्रकार की विरोधोक्ति से किया जा सकता है : कोई पार्टी जो केवल कानून में विश्वास की ही नहीं बल्कि अभिजात वर्ग की भी अवज्ञा कर दे, तत्काल सब लोगों को अपना अनुयायी बना सकती है, परंतु ऐसी पार्टी उभर नहीं सकती, क्योंकि कोई भी अभिजात वर्ग को न अपनाने का साहस ही नहीं कर सकता. हम इस तलवार की नोक पर टिके हैं. किसी लेखक ने इसका खुलासा यूं किया था, "एक स्पष्ट और असंदिग्ध कानून जो हमारे ऊपर थोपा गया है, वह है—अभिजात वर्ग . . .और क्या हम इस एकमात्र कानून से सचमुच अपने को वंचित रख सकते हैं?" □

● अनुवाद : राजेंद्र बोहरा.

काफ्का की अंतिम इच्छा थी कि 'जो कुछ मैं छोड़ जाऊं, जैसे कि कापियां, पांडुलिपियां, पत्र, रेखाचित्र आदि, बिना पढ़े जलाकर नष्ट कर दिये जायें.' इसके बावजूद उनके घनिष्ठ मित्र मास्क ब्रॉड ने, जिन्हें काफ्का की लगभग सभी रचनाओं के प्रकाशन का श्रेय है, अपने मित्र की इच्छा के विरुद्ध यह कार्य क्यों किया, यही स्पष्टीकरण इस टिप्पणी में है.

काफ्का की अंतिम इच्छा

'जो मैं छोड़ जाऊं, बिना पढ़े जला दिया जाये !'

काफ्का के जीवन-काल में उनका जितना भी साहित्य प्रकाशित हुआ, कहना न होगा कि वह मेरी चतुराई और काफ्का से मेरे अनुनय-विनय का ही परिणाम था. लेकिन इसका अर्थ हरगिज यह नहीं है कि काफ्का अपने लेखन में रुचि नहीं लेते थे. इसके विपरीत वे देर-देर तक अपने काम में जमकर लगे रहते थे. भले ही अपनी रचनाओं को वे 'घसीटना' ही समझते थे. अपनी कृति के सृजन के समय वे किस प्रकार आनंद-विभोर होकर तल्लीनता से काम करते थे, इसका अनुमान केवल वही लोग लगा सकते हैं, जिन्होंने काफ्का को किसी छोटी-सी गोष्ठी में अपनी रचना सुनाते हुए देखा है. उनके सुनाने में वह लय और नाटकीय सहजता होती थी, जो कभी किसी अभिनेता को भी प्राप्त नहीं हो पाती. अपनी कृतियों को प्रकाशित न करने देने के उनके दो कारण थे. पहले कारण के मूल में थे, उनके कुछ कटु अनुभव, जिसकी वजह से उनकी प्रवृत्ति ध्वंसात्मक हो गयी थी और अपनी रचनाओं के प्रति उनका दृष्टिकोण नकारात्मक हो गया था. इसके कारण के मूल में उच्चतम धार्मिक स्तर थे, जिनके आधार पर वे अपनी सभी रचनाओं का मूल्यांकन करते थे. (यह बात उन्होंने स्वयं कभी नहीं कही थी) और जैसा कि स्वभाविक ही था, वे रचनाएं उस प्रतिमान पर खरी नहीं उतरती थीं, क्योंकि ये स्तर उनके अपने ही जटिल व्यक्तित्व की उपज थे. वे इस तर्क को मानने के लिए कतई तैयार नहीं थे कि उन्हीं के समान सत्य, सहजता तथा आध्यात्मिक संपूर्णता की खोज में भटकते अन्य लोगों के लिए उनका साहित्य सहायक सिद्ध हो सकता है! वे स्वयं जीवन की सही दिशा खोजने में इस सीमा तक लीन थे कि यह सोच पाने में भी असमर्थ थे कि वे दूसरों का मार्ग-दर्शन कर सकते थे, जबकि अपने मार्गदर्शन की आवश्यकता पहले स्वयं उन्हें ही थी!

काफ्का के अपने साहित्य के प्रति नकारामत्क दृष्टिकोण की यही व्याख्या मैं कर पाता हूं. वे अक्सर कहा करते थे—'लिखते समय लेखक को एक प्रकार के झूठे हाथ घेरे रहते हैं!' वे यह भी कहा करते थे कि 'अब तक जो कुछ लिखा है, यह नहीं कि वह प्रकाशित नहीं हुआ है, उसके कारण आगे का लेखन पथभ्रष्ट हुआ है!' अनेक बाधाओं से गुजरने के बाद उनकी पुस्तकें प्रकाशित हो पाती थीं. जो भी हो, अपनी छपी हुई खूबसूरत पुस्तकों को देखकर उन्हें आंतरिक खुशी मिलती थी और कभी-कभी तो उनसे उत्पन्न प्रभाव भी उन्हें आनंद से भर देता था. ऐसे भी क्षण आते थे, जब वे स्वयं अपने और अपने काम की ओर बड़े उदार होकर देखने लगते थे, लेकिन उस समय उनकी आंखों में विडंबना—सौजन्यपूर्ण विडंबना—का भाव आये बिना नहीं रहता था!

फ्रैंज काफ्का के कागज-पत्रों में कभी कोई वसीयत नहीं मिली. उसकी मेज पर कागजों के ढेर के नीचे स्याही से लिखकर तहाया हुआ मेरे नाम एक रुक्का मिला, जो इस प्रकार है :

परम प्रिय मास्क, मेरी अंतिम प्रार्थना : मैं जो कुछ भी छोड़ जाऊं (बुककेस, दराज, लिखने की मेज, घर और दफ्तर में या जहां कहीं भी हों और तुम्हें मिल जायें) जैसे कि कापियां, पांडुलिपियां, मेरी अथवा दूसरे लोगों के द्वारा मुझे लिखी गयी चिट्ठियां, रेखाचित्र, आदि आदि और मेरी वे सब रचनाएं तथा नोट्स आदि जो तुम्हारे पास हों अथवा अन्य लोगों के पास हों तो उन्हें मेरा नाम लेकर उनसे मांग लेना और फिर सबको बिना पढ़े हुए शुरू से अंत तक जलाकर नष्ट कर देना! जिन पत्रों को हासिल करने में तुम किसी कारण कामयाब न हो सको तो कम से कम वे लोग उन्हें ईमानदारी से नष्ट जरूर कर दें, जिनके पास वे हों.

तुम्हारा
फ्रैंज काफ्का

और अधिक खोजने पर एक पुराने कागज का टुकड़ा मिला, जिसका रंग पीला पड़ चुका था. उस पर पेंसिल से लिखा था :

प्रिय मास्क, महीने भर से मुझे जो इस तपेदिक ज्वर ने घेर रखा है, इसके बाद न्यूमोनिया अवश्यंभावी जान

पड़ता है. लेखन कार्य में जुटने से भी कोई लाभ हो सकेगा, मुझे उम्मीद नहीं है, भले ही उसकी शक्ति से मुझे इनकार नहीं है.

यदि ऐसा कुछ हो जाये तो इसे मेरी अंतिम वसीयत समझ लेना : मैंने जितना भी लिखा है, उसमें से महत्वपूर्ण हैं : जजमेंट, स्टोकर, मेटामॉरफॉसिस, पेनल कालोनी, कंट्री डॉक्टर, तथा हंगर-आर्टिस्ट्स. (मेडीटेशन की बची हुई प्रतियों को छोड़ा जा सकता है, क्योंकि मैं नहीं चाहता कि उनसे दोबारा गूदा बनाने का कष्ट किसी को उठाना पड़े, लेकिन उसका पुनर्मुद्रण नहीं होना चाहिए.) यदि मैंने इन पांच पुस्तकों और एक कहानी को महत्वपूर्ण बताया है तो मेरा आशय यह नहीं है कि आने वाली पीढ़ी के लिए इसके नये संस्करण निकाले जायें, बल्कि यदि वे पूरी तरह से समाप्त हो जायें तो मुझे प्रसन्नता होगी. अगर उनमें से कुछ उपलब्ध हैं और कोई उन्हें अपने पास रखना चाहें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी.

लेकिन इसके अतिरिक्त मैंने जो कुछ भी लिखा है (पत्र-पत्रिकाओं में, खतों अथवा पांडुलिपियों में), मैं चाहता हूं कि तुम उसे किसी भी तरह लोगों से ले लो (ऐसे लोगों के पते तुम्हारे पास उपलब्ध हैं, जिनके पास ये चीजें हो सकती हैं. और हां , कापियां भी ले लेना, याद से. . .!) और अच्छा हो यदि बिना पढ़े ही (तुम चाहो तो उन पर एक नजर डाल सकते हो, पर अगर न पढ़ो तो बेहतर होगा. लेकिन किसी और को तो हरगिज नहीं पढ़ाना! उन सबको जलाकर नष्ट कर देना. कुछ भी शेष न बचे. यही प्रार्थना है! —फ्रंज

इतने स्पष्ट शब्दों में दिये गये निर्देशों के बावजूद मैं अपने मित्र की अंतिम इच्छा पूरी नहीं कर सकता और इसके लिए मेरे पास ठोस कारण भी हैं. इनमें से कुछ व्यक्तिगत हैं, परंतु कुछ ऐसे भी हैं, जिनका जिक्र आपके सामने करने में कोई हर्ज नहीं है और मैं समझता हूं कि वे मेरे निर्णय को सही साबित कर देंगे.

मुख्य कारण ये हैं : सन् 1921 में जब अपना नया व्यवसाय शुरू किया तो मैंने अपने मित्र से कहा था कि मैंने अपनी वसीयत तैयार कर ली है, जिसमें मैंने उससे अनुरोध किया है कि मेरे कागज-पत्रों को नष्ट कर दे, बाकी को संपादित कर दे. . . आदि आदि. उत्तर में काफ्का ने स्याही में लिखे हुए रुक्के का बाहरी हिस्सा दिखलाते हुए कहा था—'मेरी वसीयत बहुत ही आसान होगी, सिर्फ एक अनुरोध कि सब कुछ जलाकर नष्ट कर दो!' यह रुक्का बाद में उसकी मेज पर से मिला था!

उसके प्रत्युत्तर में मैंने जो कुछ लिखा था, वह मुझे स्पष्ट याद है : "यदि कभी तुमने सचमुच ऐसा करने के लिए गंभीरता से मुझसे कहा तो मैं तुम्हारी यह इच्छा कभी पूरी नहीं करूंगा!" बातचीत में हंसी-मजाक हमारी आदत थी, लेकिन ऊपर से हम एक-दूसरे को जो कुछ भी कहते रहे, भीतर से एक दूसरे के प्रति हम पूरी तरह से गंभीर थे. फ्रंज जानते थे कि मैंने पूरी संजीदगी से सोच-विचार करने के बाद ही इनकार किया है. और यदि सचमुच ही वे अपनी वसीयत के प्रति गंभीर होते तो वे मेरे स्थान पर किसी दूसरे आदमी को नियुक्त करते.

अन्य कारण थे : अपने आदेशों का स्वयं उन्होंने ही पालन नहीं किया, जो उन्होंने पेंसिल से लिखकर रख छोड़े थे. इसका प्रमाण यह है कि बाद में एक अखबार को उन्होंने 'मेडीटेशन' छापने की अनुमति दे दी थी और इसके अतिरिक्त 'हंगर-आर्टिस्ट्स' तथा तीन अन्य कहानियों का संकलन अपने हाथों से तैयार करके उन्होंने एक प्रकाशक को छापने के लिए दिया. एक बात यह भी कि जिस समय मेरे मित्र ने ये रुक्के लिखे थे, उस समय उसकी आत्म-भर्त्सना वाली प्रवृत्ति पराकाष्ठा पर थी.

जीवन के अंतिम वर्षों में उनकी जिंदगी ने एक नयी करवट ली. उनके जीवन में खुशी का संचार हुआ और आत्म-भर्त्सना तथा नकारात्मकता के स्थान पर आशावादी दृष्टिकोण का उदय हुआ. और अब जब याद करता हूं कि किस प्रकार मुझे काफ्का की एक-एक कृति को छपवाने के लिए संघर्ष करना पड़ता था (यहां तक कि जिद पकड़कर उनके पीछे लग जाता था. बाद में छप जाने पर अपनी पुस्तक को देखकर उन्हें कुल मिलाकर खुशी ही होती थी), तो मुझे अब इसे प्रकाशित करवाने का निर्णय लेने में सुविधा हो गयी है! और अंत में, मृत्यूपरांत उनकी पुस्तक छपने के कारण कई व्यक्तिगत तर्क अब निरर्थक हो गये हैं. उदाहरण के लिए काफ्का का यह भय कि पुस्तक छपने के बाद उनका आगे का लेखन पथभ्रष्ट हो जायेगा अथवा बीते हुए जमाने की दुखभरी यादें ताजा हो जायेंगी, अब बेमानी हो गये हैं. किन्हीं व्यक्तिगत समस्याओं के कारण वे अपनी पुस्तकें प्रकाशित नहीं करना चाहते थे, यह बात उन्होंने जो कुछ एक पत्र लिखकर मुझसे कही, उससे स्पष्ट हो जाता है! . . . .'मैं अपने उपन्यास शामिल नहीं करूंगा! पुरानी चेष्टाओं को कुरेदने का लाभ? क्या इसीलिए कि अभी उन्हें जलाया नहीं गया है? . . . .अगली बार जब आऊंगा तो आशा है कि वे जला दिये जायेंगे. ऐसी. . . अधकचरी, टूटी-बिखरी रचनाओं को फिर से जिंदा करने की क्या तुक है?' काश, कोई इन टुकड़ों को जोड़-जोड़कर एक संपूर्णता दे सकता, जिसपर अंतिम रूप से पुनर्विचार किया जा सके, जिसपर छाती फुलाकर मैं गर्व कर सकूं! मैं जानता हूं, यह संभव नहीं है. ये मेरे किसी काम के नहीं हैं.

अब मैं इनका क्या करूं? मेरा जितना भी सीमित ज्ञान है, उससे मुझे लगता है कि ये मेरा अहित ही कर सकते हैं. तो क्या होने दूं मैं अपना अहित?

□

● अनुवाद : कुलवंत कोछड़

'मेरा लेखन मुख्यतः आपके इर्द-गिर्द घूमता रहा. अंततः मैंने अपने लेखन में वही रोना रोया, जो आपके सीने पर सिर रखकर नहीं रो सका था.' काफ्का का वह मशहूर लंबा पत्र, जो उसने अपने पिता के नाम लिखा था और वह पत्र विश्व साहित्य का एक अप्रतिम दस्तावेज बन गया. यह पत्र काफ्का ने नवंबर 1919 में लिखा, पर उसके पिता को यह पत्र मिल नहीं पाया था.

आपके आतंक की गिरफ्त

पूज्य पिताजी,

आपने मुझसे पूछा है कि मैं आपसे डरने क्यों लगा हूं. हमेशा की तरह मैं आपके इस प्रश्न का उत्तर नहीं सोच सका. कुछ तो इस कारण कि मैं आपसे डरता रहता हूं और कुछ इसलिए कि इस भय के कारणों की व्याख्या करने में मुझे बहुत से ऐसे विवरण देने होंगे, जिनको मैं आपसे बात करते समय करीब-करीब अपने दिमाग में ही रखता था. यदि मैं अपना उत्तर लिखकर भी देने की कोशिश करूं तो वह भी अपूर्ण ही होगा. इसका एक कारण तो यह है कि आपके संबंध में लिखते समय भी आपका डर और उसके परिणाम मुझपर हावी रहते हैं और दूसरे यह विषय इतना विस्तृत है कि इसे अपनी स्मृति और विवेक शक्ति की सीमा में बांध लेना सहज नहीं.

वास्तव में, आपके प्रभाव से पूरी तरह मुक्त होकर भी यदि मैं पलता-बढ़ता, शायद तब भी मैं आपके मन-मुताबिक आदमी न बन पाता. मैं शायद तब भी केवल एक कमजोर, दब्बू , संकोची और अधीर व्यक्ति ही होता. आप विशेषकर मुझ पर इसलिए भारी पड़े, क्योंकि मेरे नन्हे-नन्हे भाई छुटपन में ही गुजर गये और मेरी बहनें इस दुनिया में काफी बाद में आयीं. इसलिए ये आघात मुझे अकेले ही सहने पड़े, जिन सबके लिए मुझमें आवश्यक सामर्थ्य नहीं थी.

मैं बचपन में दब्बू था. यही नहीं, आम बच्चों की तरह जिद्दी भी था. यह सच है कि मुझे मां ने भी बिगाड़ा है, लेकिन मेरा मन इस बात को बिल्कुल नहीं मानता कि मुझे बिल्कुल संभालना कोई बहुत बड़ी समस्या थी. मुझे इस बात पर भी विश्वास नहीं होता कि यदि कोई मुझसे मीठे बोल बोलता, हाथों से मुझे पुचकारता-चुमकारता, एक स्नेहिल दृष्टि डालता तो मुझसे कोई काम नहीं करवा सकता था. हालांकि आप अंदर से अत्यंत सौम्य और कोमल हैं, लेकिन पिताजी, सब बच्चों के हृदय में दबी सहृदयता को खोजने का धैर्य और निडरता तो नहीं होती!

बचपन की केवल एक ही घटना मुझे अच्छी तरह याद है. यह घटना आपको भी याद होगी. मैं पानी के लिए पिनपिना रहा था. मुझे अच्छी तरह से याद है कि ऐसा मैं प्यासा होने के कारण नहीं, बल्कि शायद कुछ नाराजगी जताने और कुछ खुद को खुश करने के लिए कर रहा था. काफी जोरदार धमकियों के बावजूद जब मुझ पर कोई असर न पड़ा, तब आप मुझे बिस्तर से उठाकर बरामदे में ले आये. रात के कपड़ों में मुझे वहां कुछ समय के लिए अकेला छोड़कर आप बाहर से दरवाजा बंद कर चले गये.

मैं यह नहीं कहना चाहता हूं कि यह सब गलत था. शायद उस रात के वक्त मुझे चुप या शांत कराने के लिए आपके पास इसके सिवा दूसरा कोई विकल्प भी न था. बच्चों के पालने-पोसने के आपके विशिष्ट ढंग और उसके कारण मुझ पर पड़े प्रभाव को बताने के लिए ही मुझे यह सब कुछ लिखना पड़ रहा है. यह सच है कि उस दिन के बाद से मैं काफी आज्ञा-परायण हो गया था, लेकिन इस घटना ने मेरे मन को काफी गहरी ठेस पहुंचायी.

यह सिर्फ एक छोटी शुरुआत थी. अक्सर मुझ पर छा जाने वाली शून्यता मुख्यतः आपके प्रभाव के कारण है. (ऐसी भावना किन्हीं मामलों में निश्चित रूप से उदात्त और फलदायक होती है) मुझे अपने रास्ते पर बढ़ने के लिए कुछ प्रोत्साहन और कुछ स्नेह की जरूरत थी, लेकिन आपने ऐसा करने की बजाय मेरे रास्ते में ही दीवार खड़ी कर दी. निस्संदेह आपने ऐसा अच्छे इरादे से ही किया था, क्योंकि आप मुझे दूसरे रास्ते की ओर ले जाना चाहते थे, जिसके लिए मैं उपयुक्त नहीं था.

हड्डियों को चबाते समय कड़कड़ की आवाज नहीं होनी चाहिए, लेकिन आप ऐसा करते थे. सिरके को सुड़-सुड़कर सुड़कना नहीं चाहिए, लेकिन फिर भी आप ऐसा करते थे. यह अपने-आप में बहुत ही मामूली-सी बातें हो सकती हैं, लेकिन मैं केवल इन्हीं छोटी-छोटी बातों के कारण उदास हो जाया करता था, क्योंकि आप मेरे मामले में इन सब बातों को बहुत सख्ती से लागू करना चाहते, जबकि नियमों का पालन स्वयं नहीं करते थे. इसीलिए इस दुनिया को मैंने तीन हिस्सों में बांटा था.

मेरी पहली दुनिया वह थी, जिसमें मैं एक गुलाम था. यहां के नियम सिर्फ मेरे लिए बनाये गये थे, जिनके अनुसार मुझे रहना पड़ता था. मैं नहीं जानता था कि मैंने इस दुनिया के नियमों का कभी पूरी तरह पालन क्यों नहीं किया. दूसरी दुनिया, जो मुझसे दूर-दूर थी, जिसमें आप रहते थे. इसका संबंध सरकारी काम-काज से था, जैसेकि आदेशों को जारी करना और उनके परिपालन न किये जाने पर झुंझलाना आदि. अंतिम और तीसरी दुनिया मेरे लिए वह थी, जहां पर सभी खुशहाल थे. यहां पर किसी के लिए न कोई आदेश था और न ही किसी को यहां पर किसी आदेश का पालन करना पड़ता था, किंतु मैं अनवरत अपमानित जिंदगी जी रहा था.

आपकी मुस्कान में एक अजब किस्म की मोहकता थी. ऐसी मुस्कान कम ही देखने को मिलती है. शांत, संतुष्ट और बांध लेने वाली मुस्कान . ऐसी मुस्कान, जो उस व्यक्ति को पूर्णतया गदगद कर दे, जिसके लिए हो. मुझे याद नहीं आता कि बचपन में कभी भी ऐसी मुस्कान मेरे हिस्से में भी आयी हो, लेकिन मैं सोचता हूं कि शायद ऐसा भी हो सकता है.

यह सच है कि आपने शायद ही कभी मुझे मारा-पीटा हो, लेकिन आपका जोर-जोर से चीखना, चेहरे का क्रोध से तमतमा जाना, जल्दी-जल्दी कोड़े के फीते खोलना और उसे हमेशा कुर्सी के पीछे मारने के लिए लटकाये रखने आदि की स्थिति तो मेरे लिए और भी बदतर थी. मेरे लिए यह स्थिति ठीक उस आदमी जैसी थी, जिसे फांसी दी जाने वाली हो. और फांसी पर चढ़ाये जाने से पहले की सभी औपचारिकताओं से वह गुजर चुका हो, तभी उसे अचानक बताया जाये कि उसे प्राण-दंड से मुक्त कर दिया गया है, तब वह व्यक्ति आजीवन इस प्राण-दंड की पीड़ा को महसूस करता रहेगा.

आपके इस लालन-पालन की संपूर्ण प्रक्रिया का दूसरा बाहरी प्रभाव मुझपर यह पड़ा कि मैं उन सब चीजों से भागता गया, जो मुझे कहीं दूर-दूर से भी आपकी याद दिलाती थीं. पहली चीज तो व्यापार थी–विशेषकर मेरे बचपन के दिनों की वह दूकान. मुझे यह बहुत ही पसंद आनी चाहिए थी. वह दृश्य कितना अधिक जीवंत था–शाम की रोशनियों की जग-मगाहट, तरह-तरह के लोग और उनकी भांति-भांति की बातें, यदा-कदा उनकी सहायता करना और अपने आपको उनसे कुछ ऊंचा समझना आदि. सबसे अधिक तो मैं आपकी श्रेष्ठ व्यावसायिक निपुणता, आपके सामान बेचने और ग्राहक पटाने के तरीके, परिहास, अनथक परिश्रम तथा संदेहपूर्ण मामलों में तुरंत सही निर्णय लेने की क्षमता की सराहना करता हूं. यहां तक कि आपका बंडल बांधने तथा गेट खोलने का तरीका भी लाजवाब और देखने लायक होता था. ऐसा माहौल एक बच्चे के लिए एक स्कूल से कम नहीं था, लेकिन आपका आतंक मुझे चारों ओर से ऐसा जकड़े हुए था, जिसके कारण मुझे आपमें और व्यापार में कोई फर्क दिखायी नहीं देता था. मुझे व्यापार से भी विरक्ति-सी महसूस होने लगी थी.

यदि मैं आपसे दूर भागना चाहता तो मुझे परिवार से नाता तोड़ना पड़ता, मां तक से भी. यह सच है कि हर एक को हमेशा मां से संरक्षण मिलता है, लेकिन यह संरक्षण तभी तक मिलता है, जब तक आप मेरे साथ पिता तुल्य व्यवहार करते. मां आपको बहुत अधिक चाहती थी. वह आपके प्रति अधिक समर्पित और निष्ठावान थी कि इस लंबे अरसे में भी बच्चों के संघर्ष में एक स्वतंत्र आत्मिक अस्तित्व बनाने में सफल हो सकी.

मेरी बहनें कुछ ही अंशों में मेरे पक्ष में थीं. उनमें से वाली आपकी सबसे अधिक लाड़ली थी. मां से अधिक जुड़े रहने के कारण उसे आपकी इच्छाओं के अनुरूप ढलने में न तो कोई प्रयास करने की आवश्यकता पड़ी और न ही कोई उसे बहुत अधिक पीड़ा ही सहनी पड़ी.

मेरा लेखन मुख्यत: आपके इर्द-गिर्द ही घूमता रहा. अंतत: मैंने अपने लेखन में वही रोना रोया, जो आपके सीने पर सिर रखकर नहीं रो सका था. मैं आपसे जान-बूझकर इतने लंबे दिनों तक दूर-दूर रहा.

दिमाग में ऐसी बातें ठुसी होने के कारण मैं स्वयं अपने बारे में बहुत अधिक चिंता करने लगा. यह चिंता विभिन्न रूपों में थी. मसलन, अपनी सेहत के बारे में चिंता करना. थोड़ा-बहुत पाचन शक्ति, बालों के गिरने तथा रीढ़ के झुकने के बारे में सोचने से इस चिंता की शुरुआत हुई. फलस्वरूप यह चिंता दिन दूनी रात चोगुनी बढ़ती गयी और आखिरकार सचमुच की बीमारी में बदल गयी.

मैं उन उत्तेजित दिनों की एक छोटी-सी बातचीत का हवाला देता हूं. मैंने आपको शादी के इरादे के संबंध में आखिरी बार सूचित किया था. उस समय आपने मुझसे जो कुछ कहा था, कमो-बेश इस प्रकार था:

"प्राहा की यहूदिनों के फैशन जैसा वह शायद खूबसूरत ब्लाउज पहनती होगी, जिसे देखकर तुम उसपर लट्टू हो गये और झट से शादी का फैसला भी कर लिया. सिर्फ यही नहीं, तुम जल्द से जल्द आज या कल में शादी भी करना चाहते हो. मैं क्या कहूं! आखिरकार तुम बड़े हो गये हो, इस शहर में रहते हो, हर दूसरी लड़की से शादी करने के सिवा क्या तुम और कुछ नहीं सोच सकते? क्या तुम और कुछ नही कर सकते? यदि तुम डर गये हो तो मैं तुम्हारे साथ चलूंगा.

मेरा खयाल है कि शायद ही कभी आपने मुझे अपनी बातों से इतना अधिक लताड़ा हो और इतनी अधिक घृणा दिखायी हो.

शादी के संबंध में मेरे प्रयासों पर आपने कभी भी ध्यान नहीं दिया. मैंने एक से दो बार सगाई तोड़ी और दोनों बार उससे पुन: सगाई जोड़ी. आप और मां को सगाई की रस्म निभाने के लिए बर्लिन भी खींचकर ले गया, लेकिन यह प्रयास भी निष्फल हो गया. **इन सब बातों का कारण था कि आप मेरे निर्णय को कोई खास अहमियत नहीं देते थे, लेकिन ऐसा क्यों कर हुआ?**

ऐसा कतई नहीं था कि मैंने अपनी शादी के दूसरे प्रयास में पहली बार की तरह जल्दबाजी और लापरवाही की थी. तब भी मेरी शादी क्यों न हो सकी? इसमें कुछ विशिष्ट प्रकार की अड़चने थीं, जो दुर्भाग्यवश हर विशिष्ट मामले के लिए अपना अलग स्वतंत्र अस्तित्व रखती थीं. मेरी शादी में सबसे बड़ी अड़चन तो यह थी कि मैं अपने आपको मानसिक रूप से शादी के लिए कभी पूरी तरह तैयार नहीं कर पाया. इस बात से यह स्वयं ही स्पष्ट है कि मैं जब भी शादी करने का निश्चय करता हूं तो लंबी नींद नहीं ले पाता, रात-दिन सिर जलता रहता है. यहां तक कि जिंदगी नाम की कोई चीज बाकी नहीं रह जाती. मैं हताशा के भंवर में घूमता रहता हूं.

मैं पहले ही बता चुका हूं कि लेखन और उससे संबंधित सभी मामलों में मैंने स्वतंत्र रहने के लिए प्रयास किये, जिनमें मुझे कम ही सफलता मिली, फिर भी उन प्रयासों का लेखा-जोखा करते रहना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं या यूं कहिए कि मेरे जीवन का लक्ष्य यही है कि ऐसा कोई खतरा उन तक पहुंच न सके, जिनका मैं निराकरण न कर सकूं, बल्कि ऐसे खतरों के उन तक पहुंचने की संभावना ही न रहे.

अंत में मैं आशा करता हूं कि इस पत्र के परिणाम स्वरूप जो संशोधन होंगे—जिनके बारे में विस्तार से न मैं कह सकता हूं और न कहूंगा—उनसे मेरे विचार से कुछ ऐसा प्राप्त हो सकेगा कि हम दोनों का जीना और मरना आसान हो सके.

आपका
फ्रेंज
□

● प्रस्तुति : विनोद

पहली नजर की लंबी दास्तान

20 अगस्त 1912—काफ्का अपनी डायरी में उस औरत के बारे में लिख रहा था जो आगे चलकर उसकी जिंदगी का एक बड़ा ही अहम हिस्सा बन गयी थी—

"मिस्त्र एफ. बी., जब मैं ब्रांड के घर 13 ता. को घर पहुंचा, वह मेज पर बैठी हुई थी. मुझे उसके बारे में जरा भी जिज्ञासा नहीं हुई, पर मैंने, जैसी वह थी, उसी तरह उसे कबूल कर लिया. पतला, भावहीन चेहरा—जिस पर खालीपन का एक बेबाक इजहार था. खाली गला. एक ब्लाउज पहना हुआ. अपने कपड़ों में काफी घरेलू लग रही थी, पर थी नहीं, जैसा कि बाद में पता चला. . . जब मैं अपनी कुर्सी पर बैठ रहा था—मैंने पहली बार उसे बहुत करीब से देखा, और जिस वक्त तक मैं बैठा, उसके बारे में एक पक्की राय कायम कर चुका था. . . ."

4 नवंबर, 1912 को काफ्का ने मिस एफ.बी. को यह खत लिखा—

अंतहीन दिनों की शिकायत

इस वक्त सोमवार की सुबह के साढ़े दस बजे हैं. मैं तुम्हारे खत का इंतजार शनिवार के साढ़े दस बजे से कर रहा हूं. मगर अभी तक कोई जवाब नहीं आया है. मैं तुम्हें हर रोज एक खत लिखता रहा हूं (यह किसी भी तौर पर कोई शिकायत नहीं है, क्योंकि तुम्हें खत लिखने से मुझे खुशी मिलती है). पर क्या मैं एक शब्द के लायक भी नहीं—सिर्फ एक शब्द? भले ही मैं यह कहूं कि मैं तुससे अब कोई संदेशा नहीं चाहता. इसके बावजूद मैंने तो सोचा था कि आज के खत में किसी तरह का फैसला होगा. पर शायद खत का न आना भी एक फैसला है. अगर कोई खत आता तो मैं उसका जवाब फौरन दे देता. और यह भी जरूरी था कि उस खत की शुरुआत पिछले दो अंतहीन दिनों की शिकायत से ही होती. पर तुम (खत न लिखकर) मुझे यहां अकेला और बेचारगीभरा, मेरे डेस्क पर बैठा छोड़ देती हो."

9 नवंबर, 1912 को काफ्का ने एक पत्र और लिखा—

मेरे खत संभालकर रखना

प्रिय फ्रॉलिन फेलिस,

अब तुम मुझे कभी कोई खत न लिखना और न ही मैं तुमको लिखूंगा. यह लाजिमी है कि मैं खत लिखकर तुमको चोट पहुं-चाऊंगा, और जहां तक मेरा सवाल है, मैं अब मदद के दायरे से दूर जा चुका हूं. इसका अहसास करने के लिए मुझे रात भर घड़ी की आवाज सुनते रहने की कोई जरूरत नहीं थी. मुझे इसका अहसास तब भी था, जब मैंने तुम्हें पहला खत लिखा था. इस पर भी मैंने अगर खुद को तुमसे बांधने का प्रयास किया है तो मैं निंदा के लायक हूं, यदि आज तक निंदा का पात्र रहा नहीं हूं. अगर तुम चाहती हो कि मैं तुम्हारे सारे खत तुम्हें वापस कर दूं, तो ऐसा मैं जरूर करूंगा, यद्यपि मैं उन्हें खुद रखना चाहता हूं. पर उन्हें लेने का अगर तुम्हारा हठ है, तो तुम मुझे संकेत के तौर पर एक खाली पोस्टकार्ड भेज देना. दूसरी ओर मेरी ये इल्तिजा है कि मेरे खतों को तुम संभालकर रखना—और अब जल्द ही मेरी शख्सियत को भूलकर पहले की तरह खुशहाली और सुकून से रह उठो.

लेकिन इसके बावजूद काफ्का अपनी महबूब के जवाब न पाकर बेचैन हो उठा. एक खत में उसने लिखा—

मेरे साथ रहो

"महबूब! मेरी महबूब! रात के डेढ़ बजे हैं. क्या आज सुबह के खत से मैंने तुम्हें नाराज कर दिया है? मुझे क्या पता कि अपने रिश्तेदारों और दोस्तों के प्रति तुम्हारे क्या कर्तव्य हैं! तुम इतनी परेशानी उठाती हो, और मैं अपनी शिकायतों से तुम्हें परेशान करता हूं. महबूब! मेहरबानी करके मुझे माफ कर दो. मुझे एक गुलाब भेजकर यह अहसास करा दो कि तुमने मुझे माफ कर दिया. मैं असल में थका नहीं हूं, पर मेरा स्व सुन्न और भारी पड़ा है, और मैं सही अल्फाज नहीं ढूंढ़ पा रहा हूं. मैं सिर्फ यह कह सकता हूं —मेरे साथ रहो—मुझे कभी छोड़कर मत जाओ.

प्रिय ! बस तुम मुझसे नाराज न होना ! तुमसे मेरी यही एक इल्तिजा है.

27 से 28 जनवरी 1913 के एक और खत में फ्रेंज ने लिखा—

एक छोटी-सी ख्वाहिश!

मेरी महबूब! तुम्हें इस वक्त यहां होना चाहिए था (यह एक अजीब-सा निमंत्रण है, क्योंकि आधी से ज्यादा रात गुजर चुकी है) हम एक खामोश और खूबसूरत शाम एक साथ गुजार सकते थे–इतनी खामोश की अंत में हम अजीब-सा महसूस कर उठते.

महबूब मेरी! क्या बता सकती हो कि इस कदर बेइंतहा चाहे जाने पर कैसा महसूस होता है? मैं सिर्फ तुम्हारे हाथ थाम-कर तुम्हें अपने करीब महसूस करना चाहता हूं–एक छोटी-सी ख्वाहिश? लेकिन फिर भी ये इस रात और दूरी को चीर नहीं पाती. . .

17 से 18 मार्च का एक खत—

मैं अल्फाज पर आश्रित हूं!

"तुम सही हो फेलिस! आजकल कभी-कभी तुम्हें खत लिखने के लिए मुझे खुद को मजबूर करना पड़ता है, पर तुम्हें खत लिखना और जीते रहना एक-दूसरे के बेहद करीब आ गया है, और मुझे खुद को जीते रहने के लिए भी मजबूर करना है... या नहीं?

और अब तो एक शब्द भी किसी मूल स्रोत से नहीं आता, वह बड़ी मुश्किल से किसी जगह, किसी घटना से छीना जाता है. जब मैं अपने लिखने की पूरी रौ में था, तो मैंने एक बार तुम्हें लिखा था कि किसी भी सच्चे जज्बात के अनुरूप लफ्ज नहीं ढूंढ़ने होते, पर उनका तो कई बार उनसे ही सामना होता है या उनसे उत्तेजित होते हैं. शायद यह बात पूरी तरह से सच नहीं है.

लेकिन भले ही मैं कितनी ही दृढ़ता से लिखूं, मैं वो सब कैसे पा सकता हूं जो मैं पाना चाहता हूं—तुम्हें इस बात का यकीन दिलाना कि मेरी दोनों ही इल्तिजा अपनी-अपनी जगह बराबर ही गंभीर हैं–यह, कि 'मुझसे नफरत करो' और 'मुझे चाहती रहो.'

लेकिन तुम मुझे बहुत याद नहीं करती, मैं गंभीरता से कहता हूं. क्योंकि अगर तुम मुझे याद करती होतीं तो तुम मुझे वो सफेद बाल जरूर भेज देतीं–मेरे बाल सिर्फ कनपटियों पर ही सफेद नहीं हैं, नहीं, मेरा पूरा सर ही सफेद हो चला है, और यह सोचकर कि तुम एक शख्स को इसलिए नहीं सहन कर पायी थीं, क्योंकि वह गंजा था, मेरा सर और भी सफेद हो चला है.

और अब डायरी लिखने का मेरा मन नहीं है फेलिस (अब फिर मेरी कलम मुझे 'फे' नहीं लिखने देती. यह स्कूली लड़कियों के लिए तो ठीक है. मगर एक साधारण परिचित के लिए 'फलिस' के ज्यादा मायने हैं. यह लगभग एक आलिंगन जैसा है, और मैं, जो अल्फाजों के आश्रित हूं, इस खास स्थिति में और अपनी आदत से भी, ऐसा अवसर कैसे खो सकता हूं!) जरूरी है कि वो (डायरी) असहनीय बातों से भरी होगी, बहुत ही असंभव बातों से, और क्या तुम इतना सामर्थ्य रखती हो कि उसके पन्नों को महज एक डायरी के तौर पर पढ़ो, एक खत के लिहाज से नहीं? मुझे यह आश्वासन तुमसे पेशगी ही चाहिए.

आज दोपहर को मैंने इस तरह लिखा था जैसे कि बर्लिन की यात्रा पूरी तरह से मुझ पर निर्भर है. यह सिर्फ इसलिए हुआ, क्योंकि मैंने तुम्हें खत बहुत जल्दी में डाला था. कहना बेकार है कि यात्रा पूरी तरह उस निर्णय पर निर्भर है जो तुम लेती हो.

विदा मेरी महबूब! मैं कल दिन में अपनी यात्रा की कठनाई के बारे में लिखूंगा.

और अंत में एक और खत—

तुम मुझे पूरी तरह नहीं समझतीं

प्रिय फेलिस ! मेहरबानी करके मुझसे इसलिए नाराज मत होना कि मैंने तुम्हें बहुत कम लिखा है. इसका अर्थ यह नहीं कि तुम्हारे लिए मेरे पास वक्त नहीं है. उल्टे, जबसे मैं बर्लिन से आया हूं, बहुत कम पल ही ऐसे गुजरे हैं, जब मैं पूरी तरह से ही नहीं, मूलतः और पूरी तरह तुम्हारा नहीं हुआ हूं. सिर्फ इतनी-सी बात है कि कल मैं ऑसिग में था. वहां से घर देर से लौटा, और फिर केवल थकान से चूर एक पुतले-सा टेबल पर बैठा रहा. मैं थकान के भयानक दौर से गुजरता रहा हूं. अपने कंधों पर आया हुआ मेरा सर तब एक मनुष्य का सर नहीं लग रहा था. बुध और ब्रहस्पत की रात को, यानि ऑसिग की यात्रा से पूर्व मैं साढ़े ग्यारह से पहले अपने पलंग तक नहीं पहुंचा, क्योंकि मुझे फाइलों का अध्ययन करना था, पर फिर अपनी थकान के बावजूद मुझे नींद नहीं आयी. मैंने एक बजे का घंटा सुना , और फिर भी सुबह साढ़े चार बजे उठना पड़ा. खिड़की खुली हुई थी और अपने खयालों के भंवर में आकर, मैं पूरे पंद्रह मिनट अपनी खिड़की से अंदर-बाहर कूदता रहा. फिर रेलगाड़ियां आयीं, एक के बाद एक मेरे पटरियों पर पड़े शरीर के ऊपर होकर गुजरने लगीं. मेरे गले और पैरों में दो चौड़े और गहरे घाव करती हुई. पर मैं यह सब क्यों लिख रहा हूं? महज इसलिए कि मैं तुम्हें करुणा से अपनी ओर खींचना चाहता हूं और उसकी खुशियों में डूबना चाहता हूं, इससे पहले कि मेरा सच कबूलना इस सबको नष्ट कर दे.

बर्लिन की यात्रा में मैं तुम्हारे कितने करीब था! मैं तुमसे सांस लेता था. पर तुम मुझे पूरी तरह नहीं समझतीं. मेरी सबसे प्यारी महबूब! जबकि मेरी समझ में नहीं आता कि तुम उन सब चीजों से किस तरह आंखें मूंद सकती हो, जो तुम्हारे करीब हो रही थीं. क्या केवल दया से? और अगर यह संभव है, तो क्या हर चीज संभव नहीं? पर मैं इस सबके बारे में फिर तुम्हें विस्तार से लिखकर बताऊंगा.

● प्रस्तुति : आभा दयाल

काफ्का की शादी हमेशा होते-होते रह गयी, लेकिन उसकी जिंदगी प्रेम के गहरे अहसासों से लबालब थी. एक लड़की से तो उसकी पहली ही मुलाकात अपने-आप में खतों का एक लंबा सिलसिला बन गयी,जो'प्रिय फ्रॉलिन बाउर' से शुरू होकर 'प्रिय फेलिस' की दहलीज लांघती हुई, 'मेरी महबूब 'तक जा पहुंची. काफ्का के पिता के नाम लिखे पत्र के बाद प्रस्तुत हैं फेलिस को लिखे कुछ पत्र,जो काफ्का की उस मनःस्थिति को भी रेखांकित करने में मदद करते हैं, जबकि सब कुछ हो रहा होता है और कुछ भी नहीं हो रहा होता...

मैं अपने ही शरीर के प्रति निराश होकर ऐसा लिखता हूं!

काफ्का की डायरियां

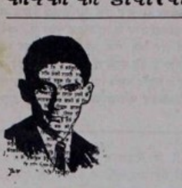

उसका असंतोष असीमित था. एक पाठक के तौर पर उसने अपनी रचनाओं को कभी पसंद नहीं किया. वह अपने असुंदर होने के बोध के बोझ को भी बराबर ढोता रहा. वह था ही ऐसा—व्यावसायिक प्रबंध, कल-कारखानों और मित्रों की दिनचर्या के बीच एक बेचैन संवेदनशील प्राणी. एकाकी क्षणों में लिखे गये काफ्का की डायरी के ये पन्ने मात्र घटनाओं का विवरण नहीं, बल्कि उसके भीतर की तड़प और जीवन के प्रति एक दार्शनिक के असंयत रवैये का रचनात्मक पहलू है, उसकी विश्लेषणात्मक प्रतिक्रिया और जीवन दृष्टि है—

डायरी के पन्नों में काफ्का के भीतर का लेखन न जाने कितनी बार मरता और जीता है! कहीं उसे अपने शिक्षित होने पर पश्चाताप होता है तो कहीं बहुत-सा न लिखने पर झुंझलाहट. इन पन्नों में उसका बदसूरत होना उसे सालता है, पर शक्ल से कहीं अधिक अपने अंदर भरा-पूरा होने पर वह संतोष भी कर लेता है. विषय की दृष्टि से डायरी का कोई क्रम नहीं है. हो भी नहीं सकता, पर दिनचर्या से कहीं अधिक यह उसका अंतर्द्वंद्व है. काफ्का का जीविकोपार्जन का साधन किसी कल-कारखाने में नौकरी अथवा व्यवसाय प्रबंध है, पर इस नीरस वातावरण में उसके अंदर का लेखक उसे इतना संवेदनशील बना देता है कि हम उसके जीवन की इस पक्ष की कल्पना भी नहीं कर सकते. डायरी स्थानीय वातावरण और मित्रों के साथ भेंट की घटनाओं से भरी पड़ी है. अपने एकाकी क्षणों में काफ्का जब इन पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है तो वह लेखक से कहीं अधिक एक दार्शनिक ही नजर आता है. रचनाकार के रूप में अपनी ही रचनाओं से ही संतुष्ट न होना और अपनी ही पांडुलिपियों को पढ़कर उन्हें प्रकाशन योग्य न समझना, यही सिद्ध करता है कि काफ्का में बहुत-सा लिखने की और सब कुछ श्रेष्ठ लिखने की आकांक्षा किस हद तक थी. 1911 से 1923 तक की डायरी के पन्ने उसके भीतर की तड़प और जीवन के प्रति उसके असंयत रवैये की बिखरी हुई-सी कहानी है. जिसका कहीं ओर-छोर नजर नहीं आता. इसी डायरी में उसकी यात्रा के भी कुछ पन्ने हैं जो स्थानीय परिस्थितियों और उसके आसपास के लोगों से जुड़े हैं. काफ्का घर में हो या कार्यस्थल में या यात्रा में, सभी जगह अपने उपन्यास के पात्रों को ढूंढ़ता है. इसीलिए वह लिखता बाद में है, पहले अपने को कहीं फेंक देता है. और फिर अपनी ही खोज में जब निकलता है तो सहज ही वह उसका लेखन अथवा साहित्य बन जाता है.

डायरी : १६१०

संगीत प्रेमी, नर्त्तकी एड्यूराडोवा दो वायलन वादकों के साथ ट्राम में सफर करती है. अक्सर वह नृत्य करती और वे वायलन बजाते. अगर ट्राम में नृत्य करना अच्छा लगे, मुसाफिरों का मनोरंजन हो और खर्च कुछ भी न हो, तो नृत्य करना क्या बुरा है! शुरू में यह विचित्र-सा लगता है और फिर थोड़ी देर के लिए हर कोई इसे बेजा मानने लगता है. लेकिन पूरी रफ्तार में ठंडी हवा में सुनसान सड़क पर यह कितना अच्छा लगता है!

नर्त्तकी एड्यूराडोवा स्टेज पर जितनी अच्छी लगती है, उतनी वैसे खुले में अच्छी नहीं लगती. उसका उड़ा हुआ-सा रंग, गालों की हड्डियों की वजह से उसके चेहरे की तनी हुई खाल, उसके चेहरे को बिल्कुल भावहीन बना देती है. फिर असली चेहरा तो वह मालूम ही नहीं देता. लंबी मुड़ी हुई-सी नाक, वह उसका बड़ा-सा-आकार—यह सब किसको अच्छा लगता होगा! वह बड़ी उम्र की मेरी चाची-सी लगती है. लेकिन पैर उसके बहुत सुंदर हैं. उसके प्रति कोई भी उत्साहित नहीं होता और न सम्मान की दृष्टि से देखता है. मैंने अक्सर लोगों को उसके प्रति उदासीन देखा है.

एड्यूराडोवा जैसी विख्यात नर्तकी के प्रति अपनी उदासीनता का भाव बहुत भले और चतुर लोग भी छिपा नहीं पाते, हालांकि उसके सामने वह ऐसा करने की बहुत कोशिश करते हैं.

मैं अपने ही शरीर के प्रति निराश होकर ऐसा लिखता हूं.

जब निराशा इस हद तक पहुंच जाती है, तो फिर कुछ ऐसा लगने लगता है कि जैसे सैनिक पीछे हटकर निराशा अनुभव करने के बजाय अपने टुकड़े कर देना ज्यादा बेहतर समझता हो.

क्या आप निराश होते हैं
हां अवश्य होते हैं—फिर
आप भागना चाहते हैं
आप अपने को छिपाना चाहते हैं.

आखिर इन पांच महीनों में मैंने कुछ भी नहीं लिखा, जिससे स्वयं मुझे ही संतोष मिलता. अब कौन इसका हर्जाना भरेगा. वैसे सभी पर इसकी जिम्मेदारी है. अब मेरी फिर अपने से बात करने की इच्छा होती है. जब भी मैं अपने से सवाल करता हूं तो मुझे जवाब जरूर मिलता है. इन पांच महीनों में मेरे भीतर ऐसा जरूर रहा, जो आग पकड़ सकता था. इन पांच महीनों में मुझमें जो आग पकड़ने वाला यह ढेर रहा, उसमें गर्मियों में तो आग लग जानी चाहिए थी. जिसमें मैं भी शायद जल जाता और देखने वालों को पता भी न चलता. यही मेरी नियति होती. पर जितना हो सकता था उससे दस गुना हुआ. पर मुझे इस बेचैनी और दुख का कोई अफसोस नहीं है. मैं दुखी नही हूं, पर सुखी भी नहीं हूं. उदासीनता नहीं है, किसी के लिए कोई कमजोरी भी नहीं है. कहीं कोई रुचि नहीं, पर यह सब है क्या? मैं समझ नहीं पा रहा हूं. क्या मेरी इस मनःस्थिति का संबंध लिखने की मेरी असमर्थता से है. हां, मुझे कारण मालूम नहीं है. लेकिन लग रहा है, यह सब मेरी लिखने की असमर्थता ही है. पर ऐसा मुझे बिल्कुल जड़ से अंदर से नहीं लगता, कहीं बीच से महसूस होने लगता है. कोई इन सब बातों को शुरू से ही समझे. घास जब उगने लगे तबसे ही उसकी कटाई हो जाये तो वह फिर उग नहीं पाती.

▣

इतवार, 19 जुलाई—सोया, जागा, फिर सोया और फिर जागा. जिंदगी अच्छी नहीं है. कभी-कभी सोचता हूं, शिक्षित होकर मैं एक तरह से घाटे में रहा. दरअसल मैंने अपनी जगह से बाहर निर्जन स्थलों या पर्वतों में शिक्षा नहीं पायी. यह कुछ ऐसी बात है जिस पर पश्चाताप का एक शब्द भी मैं न कहता.

मेरे पिछले अध्यापकों ने यह सब नहीं समझा, पर मैं चाहता हूं कि यह पढ़ाई कहीं कंदराओं, गुफाओं और निर्जन खंडहरों में हुई होती, जहां मेरे दोनों तरफ पत्थर होते. भले ही इस तरह की पढ़ाई में मेरे गुण उभरकर न आते, लेकिन जंगलों की शक्ति से ये गुण बढ़कर लंबे हो जाते.

यह सब सोचकर ही मैं कहता हूं कि शिक्षित होकर मैं कई दृष्टियों से घाटे में रहा. शिक्षित होकर पछताने की बात बहुत लोगों के साथ होगी. मां-बाप, कितने ही सगे-संबंधी, घर आने-जाने वाले लोग, अनेक लेखक और खासकर घर का वह खानसामा, जो एक वर्ष तक मुझे स्कूल लाता, ले जाता रहा और फिर अध्यापकों की पूरी लाइन. सब मुझे याद आते हैं. वह स्कूल इंस्पेक्टर भी मुझे याद है जो धीरे-धीरे टहलता हुआ हमारी क्लास में चला आता था. यह सारी शिक्षा समाज पर एक छुरे जैसी लगती है. कभी यह छुरा आगे तो कभी पीछे नजर आने लगता है.

शिक्षित होने पर पश्चाताप में कोई विसंगति नहीं है. कुछ इसे विसंगति मानते हैं. ऐसा मैं सुनता रहा हूं. मैं तो प्रायश्चित में इन विसंगतियों को भी शामिल करता हूं और फिर कहता हूं, शिक्षित होकर या शिक्षा पाकर मैं घाटे में रहा हूं.

मैं प्रायः इस पर सोचता रहता हूं और फिर मुझे कहना ही पड़ता है—इस शिक्षा ने मुझे नुकसान पहुंचाया. मेरा ! यह सोचना अपने लिए ही नहीं, बहुतों के लिए है. दरअसल यह कुछ ऐसा है, जैसे परिवार के सदस्य फोटो खिचवाने के लिए खड़े हों और उन्हें यह मालूम न हो, हमें अब करना क्या है! उन्हें खुद यह नहीं सूझता कि हमें अपनी आंखें नीची करनी है, या फिर सोच रखें कि फोटो खिचवाते समय मुस्कराना भी है. इस तरह की पंक्ति में मेरे मां-बाप, अनेक संबंधी, अध्यापक, वह खानसामा, नृत्य स्कूल की लड़कियां, हमारे घर आने-जाने वाले बहुत से लोग, लेखक और स्कूल तथा घर से संबंधित सभी लोग आ जाते हैं. मैं इन सब लोगों को कभी याद नहीं करूंगा. जीवन में बहुत ऐसे लोग हैं जिनकी तरफ से उदासीन हो जाना पड़ता है. अपनी शिक्षा पर पश्चाताप करके मैं इन लोगों का अब एक-दूसरे से परिचय करा रहा हूं. मुझ पर पहले से ही न जाने कितनी विसंगतियों का बोझ है! बस यही कहूंगा कि शिक्षा प्राप्त करके मैंने नुकसान ही उठाया.

मेरी इस बात को सुनकर शायद कोई यह संदेह करने लगे कि मेरी शिक्षा स्कूलों आदि में नहीं, कहीं और हुई होगी. जी नहीं, मैंने भी शहर के बीचोंबीच शिक्षा प्राप्त की है. न पहाड़ों में न कहीं खंडहरों में, न झील के किनारे. अभी तक तो शिक्षा के मामले में मैं अपने मां-बाप को लेकर ही पश्चाताप कर रहा था. वे मुझे एक तरफ करके सिर्फ मुस्कराते तो नहीं रह सकते, मैं उनकी तरफ से हाथ खींचकर दोनों हाथ अपने माथे पर रखे सोच रहा हूं. काश, मैं खंडहरों में होता, कौओं की आवाजें सुनता, चांद की ठंडक में अपने को ठंडा रखता, और सूरज की गर्मी में अपने को जलाता ... गुणों की दृष्टि से मैं थोड़ा कमजोर होता. पर ये गुण मुझमें, जंगलों और झाड़ियों में विकसित होते. तभी तो मैं सोचता हूं, शिक्षा प्राप्त कर मैं घाटे में रहा.

जब भी मैं सोचता हूं तो मुझे यही लगता है कि शिक्षा ने ही मुझे बरबाद किया. मैं भी तो औरों की ही तरह

एक आदमी हूं. भले ही मैं थोड़ा कम सुंदर, नाटा और कम हट्टा-कट्टा हूं, पर शारीरिक दृष्टि से तो मैं औरों जैसा ही हूं. मैं दूसरों को अच्छा भी लगता हूं. यहां तक कि लड़कियों को भी अच्छा लगता हूं. अभी उस दिन एक लड़की ने मुझसे एक बहुत अच्छी बात कही, बोली, "अगर मैं एक बार तुम्हें बिल्कुल नंगा देखती तो तुम मुझे कितने अच्छे लगते! ऐसे में मैं तुम्हें चूमे बिना नहीं रह सकती थी." अगरचे मेरा ऊपरी होंठ इतना अच्छा नहीं है, पर चूमने के लिए कान, उंगलियां और शरीर के दूसरे अंग तो हैं. मेरे सिर पर भले ही कहीं-कहीं बाल नहीं हैं, लेकिन भीतर से तो मैं भरा-पूरा हूं. दूसरों की तरह मेरे अंदर बहुत-सी ऐसी बातें हैं जो दूसरों को अपनी तरफ खींच सकती हैं. इन सब बातों को मेरी यह मूर्खतापूर्ण शिक्षा छीन तो नहीं सकती. पर मेरे भीतर जितना जो कुछ सुंदर है, वह मेरे शरीर से प्रकट नहीं होता. शरीर में कुछ त्रुटियां हैं तो यह मेरा कसूर तो नहीं है. इसीलिए मुझे अपने पर कोई पछतावा भी नहीं होता. पछतावा शायद मेरे लिए अच्छा होता. इससे पीड़ा एक तरफ हो जाती. और फिर यह आदमी की अपनी एक अलग ही मनःस्थिति बन जाती है. हम कुछ अलग होकर राहत-सी महसूस करने लगते हैं.

▣

16 दिसंबर : मैं डायरी तो लिखता ही रहूंगा. मुझे लिखते ही रहना चाहिए. समय-समय पर अचानक ही मुझमें खुशी की जो लहर दौड़ जाती है, उसे तो व्यक्त करता ही रहूंगा. इससे मुझे एक प्रकाश-सा मिलता है. मुझमें इससे अपनी ही खूबियों का एहसास होता है. भले ही मुझमें ये खूबियां न हों.

▣

26 दिसंबर : पिछले दो-तीन दिनों से मैं कुछ अकेला-सा महसूस कर रहा हूं. हालांकि हूं नहीं. अकेलापन मुझ पर हावी हो जाता है. मेरे अंदर का कुछ पिघल-सा जाता है. फिर अंदर जो कुछ बहुत गहरा है, बाहर निकलना चाहता है. फिर अंदर कुछ व्यवस्थित-सा होने लगता है. फिर मुझे कुछ और नहीं चाहिए, क्योंकि अव्यवस्था ही मेरी प्रतिभा को कुंठित कर देती है.

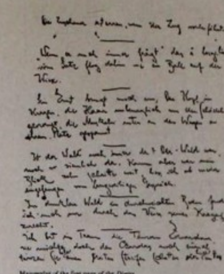

Manuscript of the first page of the Diaries

डायरी की पांडुलिपि का प्रथम पृष्ठ

▣

27 दिसंबर : मेरे अंदर की शक्ति एक भी वाक्य लिखने के लिए काफी नहीं है. अगर यह शब्दों का ही प्रश्न होता, तो एक शब्द लिखना ही काफी होता. यदि एकाकी होने की चेतना में एक शब्द ही मिल जाये तो वह शब्द ही आदमी को अंदर से भर देता है.

तीसरे पहर थोड़ा-सा सो लिया. जगा तो सोफे पर बैठ गया और अपनी युवावस्था के प्रेम अनुभवों पर सोचने लगा.

▣

28 दिसंबर : माक्स और बाइन दोनों मित्रों के साथ आज कुछ घंटों के लिए मैंने एक साधारण व्यक्ति की तरह बर्ताव किया. फिर मैं खूब सोया.

डायरी : १९११

2 अक्तूबर : रात भर नींद नहीं आयी. इस तरह का यह तीसरा दिन है. पहले तो मैं गहरी नींद में सो जाता हूं. फिर एक घंटे बाद ही जग जाता हूं, जैसे मैंने अपना सिर कहीं गलत जगह रखा हुआ था. जागने पर ऐसा लगने लगता है, जैसे मैं सोया ही नहीं. फिर लगता है सोने में बहुत परिश्रम करना पड़ता है. फिर सवेरे पांच बजे तक कुछ अर्द्धनिद्रा में रहता हूं. फिर कुछ अस्पष्ट-से स्वप्न मुझे जगा देते हैं. फिर पांच बजे तो रही-सही नींद भी जाती रहती है. जागने जैसी हालत में स्वप्न देखता हूं तो थक-सा जाता हूं. जब मैं जाग जाता हूं तो स्वप्न मेरे चारों तरफ आकर इकट्ठे हो जाते हैं. पर मैं उनको अपने पर हावी नहीं होने देता. सवेरे तकिए में मुंह देकर मुझे बड़ी राहत ही मिलती है. लगता है इस रात की आशा भी गयी. फिर मैं उन रातों की बात सोचने लगता हूं, जब मैं ऐसा सोया कि जागने के बाद भी सिमटकर रह गया था.

मैं समझता हूं, नींद न आने का कारण मेरा लिखना है. कितना कम लिखता हूं, कितना खराब लिखता हूं! पर मैं इतना संवेदनशील हूं कि साधारण-सी घटनाओं से भी सिहर उठता हूं. फिर शाम होते-होते मैं उन पर सोचने लगता हूं. सवेरा होते-होते मेरी यह सोच और भी गहरी हो जाती है. फिर ऐसे क्षण आते हैं जो मुझे चीर देते हैं. फिर तो जो मेरे अंदर है, वह निकलने लगता है. फिर उस पर मेरा भी कोई काबू नहीं रहता. फिर चैन कहीं नहीं मिलता है. आखिर यह अंदर का गुबार दब जाता है. जिसने मुझे एकदम खुला छोड़ दिया था. उस पर मैं संयम बरतने लगता हूं. पर अब इस तरह के क्षण बहुत कमजोर-सी आशाएं जगाते हैं और मुझे हानि अधिक पहुंचाते हैं, क्योंकि यह सब समाकर या संजोकर रखने की शक्ति अब नहीं रही. दिन में तो यह अस्पष्ट से शब्द सहायक होते हैं, पर रात को तो ये मुझे टुकड़ों में बांट देते हैं. ऐसे में मुझे हमेशा पेरिस याद आता है—पेरिस के घिराव के समय और फिर कम्यून स्थापित होने तक पेरिसवासियों से कहीं अधिक वहां की सड़कों पर विदेशी दिखाई पड़ते थे.

पर मुझे संतोष है (अब, जब कि मैं

सोने जा रहा हूं). मैंने आज लिखने में बहुत समय नहीं लगाया. आज की परिस्थितियों में मेरे इस लेखन को उचित स्थान भी नहीं मिलेगा. सौभाग्यवश सफलता भी मिली तो वह अस्थायी होगी.

▣

5 अक्तूबर : आज कई दिन बाद फिर वही बेचैनी, हालांकि इस समय लिख रहा हूं. गुस्सा बार-बार अपनी बहन पर आता है जो क्षण-क्षण कमरे में आकर किताब लेकर सामने बैठ जाती है. कहीं ऐसा न हो अबकी बार आये तो गुस्से में कुछ कह ही न बैठूं. आखिर वह मेरी ट्रे में से विजिटिंग कार्ड लेकर हंसती हुई चारों तरफ चक्कर लगाने लगती है. बस मेरे पीछे वह कागज-सा हिलाने लगती है. गुस्सा नहीं रह जाता और मैं विश्वास के साथ फिर लिखने लगता हूं.

कुछ लोग रात मिलने आये, पुरुष और स्त्रियां. इनमें से एक पति-पत्नी भी थे. मैं समझ नहीं पाया, ये पति-पत्नी किस तरह के लोग हैं. मेरे लिए तो वे कुछ ऐसे थे, जैसे किसी मंदिर के कर्मचारी हों या किसी ऐसे संप्रदाय के, जिसे समाज आदर देकर अपना लेता हो. इन्हें समाज में प्रतिष्ठा मिल जाती है, और फिर आवारा घूमते हुए या किसी की जासूसी करते हुए ये कुछ अच्छे गाने याद कर लेते हैं. पर ये स्वयं नहीं समझ पाते, जो कुछ भी ज्ञान इन्होंने प्राप्त किया है, उसका ये करें क्या? ये बिना कुछ सोचे-समझे निराशा में ही रहते हैं. ये दूसरों को मूर्ख बनाते हैं और अपने धर्म के किसी विरोधी या अन्य धर्म के व्यक्ति की हत्या पर हंस देते हैं.

युवतियों से कभी बात करने के लिए मुझे अपने पास किसी बूढ़े आदमी को बिठाने की जरूरत पड़ती है. उनकी तरफ से थोड़ी सी भी बाधा मुझे और बोलने का बढ़ावा देती है. मैं जब लड़कियों से बिना सोचे-समझे कुछ कह देता हूं तो मैं ऐसा दिखाता हूं कि यह तो इस बूढ़े आदमी के लिए कहा गया है.

यही तो मदद है जो मुझे ऐसे नाजुक मौकों पर बूढ़े आदमियों से मिलती है.

▣

10 दिसंबर : इतवार, मुझे अपनी बहन और उसके बच्चे को देखने उनके घर जाना चाहिए. जब मां रात को एक बजे बहन के घर से बालक के जन्म का समाचार लेकर आयी, तो पिताजी ने नाइट-सूट पहने हुए ही सारे दरवाजे खोल दिये. मुझे और घर की नौकरानी को जगाया, और बच्चे के जन्म की कुछ इस तरह घोषणा की, जैसे वह पहले से ही था, सम्मान का जीवन बिता रहा था और दफना भी दिया गया.

जब लंबे अंतराल के बाद मैं लिखना शुरू करता हूं तो शब्द ऐसे लेता हूं, जैसे खाली हवा से कुछ पकड़ रहा होऊं. यदि कोई हाथ आ जाये तो लगता है बस एक ही मिला है. और फिर नये सिरे से शब्दों को पकड़ने की कोशिश करता हूं.

डायरी : १९१२

11 अगस्त : कुछ नहीं लिखा. मेरी एक छोटी-सी पुस्तक के छपने में भी कितना समय लगता है! फिर अपनी ही अप्रकाशित पुरानी रचनाओं को पढ़ना कितना नुकसानदेह, हास्यास्पद और अपने ही अहं को चोट पहुंचाने वाला होता है. इसीलिए कुछ लिखने को मन नहीं करता. फिर अब तक ही मैंने क्या पा लिया! यह मेरे अंदर की बेचैनी ही इसका सबूत है. अब इस पुस्तक के छपने के बाद मैं पत्र-पत्रिकाओं और समीक्षाओं आदि से अपने को दूर रखूंगा. अपनी उंगलियों पर गिने जाने लायक सत्य से मैं संतुष्ट नहीं रहना चाहता. मैं अब कितना जड़-सा हो गया हूं! पहले मेरा एक शब्द भी घटना की दिशा बदल देता था. पहले मैं दूसरी ओर दूर तक देखता था और अब केवल अपनी ही तरफ देखता हूं. जो मैं हूं, वही बनकर रह गया हूं.

डायरी: १९१३

19 नवंबर : डायरी पढ़कर मैं द्रवित हो उठता हूं. शायद इसलिए कि अब मुझमें थोड़ा-सा भी आत्म-विश्वास नहीं रह गया. हर चीज मुझे अपने ही दिमाग की एक बनावट-सी लगती है. आजकल मैं अपने में जितनी अनिश्चितता अनुभव करता हूं, उतनी पहले कभी नहीं की. जीने की शक्ति अपने में अनुभव करता हूं. मैं रात को पहाड़ों पर भटकने वाली एक भेड़ हूं, या फिर ऐसी भेड़ जो दूसरी के पीछे भाग रही है. खो भी गया हूं और खोने का दुख भी नहीं है.

डायरी : १९१४

11 फरवरी : यदि मैं आत्महत्या कर लूं तो कोई इसके लिए दोषी क्यों हो. उदाहरण के तौर पर इसका तात्कालिक कारण एफ का बर्ताव हो सकता है. एक दिन कुछ सोते और कुछ जागते मैंने इस दृश्य की कल्पना की. अंतिम विदाई का पत्र मैं अपनी जेब में रख लूंगा. पहले मैं उसके घर जाऊंगा और मुझे वह प्रेमी अथवा पति के रूप में अस्वीकार कर देगी. बस घर आकर मैं पत्र तो मेज पर रख दूंगा और बरामदे की तरफ बढूंगा. कोई मुझे पीछे से पकड़ेगा तो भी मैं नीचे छलांग लगा दूंगा. पत्र में लिखा होगा—चूंकि मैं एफ. के बिना नहीं रह सकता, इसलिए छलांग लगा रहा हूं. पर अगर वह मेरा सुझाव स्वीकार भी कर लेती, तो भी कोई तब्दीली होने वाली नहीं थी. फिर भी मेरी जगह तो नीचे ही थी. एफ से मेरा भाग्य बंधा हुआ है. मैं उसके बिना नहीं रह सकता. पर एफ को संदेह है कि मैं उसके साथ नहीं रह सकता. आज की रात ही यह सब क्यों न कर लूं. आज शाम को तो कुछ लोग होंगे ही जो जिंदगी की, और उसे बेहतर बनाने की बात करेंगे. पर यह सब खामखयाली है. मैं यह सब नहीं कर सकता. मैं बहुत शांत आदमी हूं. जरा कमीज का कालर भी चुभने लगता है, तो मुझे लगता है कि दम घुट रहा है.

● प्रस्तुति : श्यामलाल शर्मा

काफ्का के लेखन को लेकर एक शिकायत बराबर बनी रही है कि उसे पढ़ते हुए यह समझ में नहीं आता कि वह आखिर क्या है, जो समझ में नहीं आ रहा!... आम राय है कि यह समस्या किसी लेखक को व्यक्तिगत स्तर पर जान लेने पर काफी हद तक हल हो सकती है. इसी उद्देश्य से, पिछले पन्नों पर काफ्का की डायरी में दर्ज उसके निजी संसार से हुए परिचय के बाद, अब प्रस्तुत है उसके दर्शन संसार का एक व्यावहारिक रूप—काफ्का की डायरी पढ़कर उसके एहसासों में जिये गये व्यावहारिक क्षणों का शब्दचित्र, जो रचना के स्रोत और उसके जीवन पर प्रभावों के संयोजन का एक उदाहरण भी है—

काफ्का की डायरी पढ़ने के बाद

जिंदा और मुर्दा दर्द

▣ आभा ख्याल

कल रात काफ्का की किताब **डायरीज ऑफ फ्रंज काफ्का** का अंग्रेजी अनुवाद पढ़ा. काफ्का बात कर रहा था उस जमीन की, जो पैरों के नीचे होती है —उतनी, जितनी तलवों के नीचे समा सके. और उस हवा की, जो हथेलियों में आ जाती है.

मेरे मन में दूरियों से आती हुई एक आवाज गूंज रही थी, 'एक आदमी के पास केवल एक चीज अपनी होती है—उसका अपना दर्द, और इस पूरी दुनिया में और कोई भी दवा उसका मुदावा नहीं बन सकती, सिवाय उस धरती के, जितनी उसके दोनों पैरों के नीचे आ सकती है, और केवल उतनी पकड़ के, जितनी उसके दोनों हाथों में आ सकती है....'

....मैं झुककर अपने दोनों पैरों को देख उठती हूं—ये कमबख्त पैर! जिन्हें खड़ा भर रहने के लिए अगर जगह मिल सकती ....और मेरे ये खाली हाथ, जो आज तक एक खयाल भी नहीं पकड़ पाये....

और मन के दुखते कोने से एक खयाल उगा, 'काफ्का!....बता, उस दर्द का क्या करूं, जिसकी इस भरी दुनिया में और कोई दवा नहीं, सिवाय उस जमीन के....और मेरे हाथों में कोई एक एहसास भी ऐसा नहीं जो राहत दे सके' ...

वक्त के घने अंधेरे मेरे आगे खड़े थे... इन्हीं अंधेरों में से एक अंधेरा मेरे आगे आ खड़ा होता है, कांपते-हिलते अंधेरों में से, एक कांपता-हिलता अंधेरा....

'तू मुझे बुलाती थी?'

आवाज की एक लहर मेरे कानों को भिगो गयी—'कौन?...कौन है तू?'

मेरी आवाज तेज होकर बुझ गयी.

'मैं?...काफ्का!' हवा का झोंका दूर से कुछ शब्द ले आया.

'काफ्का! पर तू...सालों के घने साये चीरकर मेरे सामने!'

हैरानी की बूंदें मेरे माथे पर उभर आयीं....'तेरी आवाज बहुत देर से, मेरे पैरों के लिए रोशनी करती रही...'

बरसों के अंधेरों से निकलकर, मेरे सामने एक साया-सा अंधेरा लरज रहा था.. .आवाज जैसे धरती की कोख से फूट रही थी....

'तू उसी जमीन में जज्ब हो गया था, जिसे तू कभी अपनी कहता था?'

'हां! तभी तो मेरी दोस्त, मैं तुझसे कहने आया हूं कि कभी किसी जमीन को अपना मत बनाना....'

मैं जड़ हुई जा रही हूं, 'भले ही वह जमीन वो हो, जिस पर मेरे पैर टिके हैं?'

'पागल! नीम पागल! अपने पैरों की तरफ जरा गौर से तो देख!'

मैंने घबराकर अपनी नजरें अंधेरे पर जमा दीं...

मुझे पता है, मेरे पैर जमीन पर नहीं ...हवा पर ...नहीं! शायद खलाओं में टिके हैं...

'तू कहना क्या चाहता है?'

'यही कि चलते रहने के दर्द से कहीं ज्यादा दर्द तब होता है, जब तुम पूरे के पूरे उसी धरती में जज्ब हो जाओ

डायरी लिखते-लिखते काफ्का अक्सर कुछ चित्र बना जाया करते थे जो उनकी मनःस्थितियों का संकेत करते हैं. उन्हीं चित्रों में से एक चित्र

जो तुम्हें इतनी अपनी लगती है...'

हवा सरसरा उठी....कई लम्हे चुपचाप गुजर गये...

मैं बेहद खौफ खा उठी हूं...पता नहीं, यह खलाओं में टिका होने का खौफ है या उस जमीन में जज्ब हो जाने का, जो मेरे पैरों को नसीब नहीं हुई.

'पर तू यहां! किताबों के पन्नों से! ...एक आवाज बनकर!'

'किताब के पन्नों से नहीं, तेरे खयालों से. तूने गौर से पढ़ा तो तेरे आगे निकल आया...तू सोचना बंद कर देगी तो यहीं समा जाऊंगा, तेरी सोचों में...'

एक बड़ा ही तीखा सवाल...और मुखक भी, मेरी हथेली पर आकर टिक गया, 'अच्छा! तो यही है वह धरती, जिसे तू अपनी कहता था....सोचों की....'

'हां! अपना कहने लायक तो एक बालिश्त धरती का टुकड़ा भी अपना नहीं होता—सिर्फ एक सोचों की धरती के सिवा ...ये कभी फैलकर एक राह बन जाती है, कभी एक छत, एक घर और कभी एक भरी-पूरी दुनिया... तो कभी सिमटकर सिर्फ तलवों के नीचे समा जाती है.'

'और दर्द?...तू जिस दर्द की बात करता था?'

'सोचों की छाती से निकलकर सोचों की छाती में समा जाने का दर्द...'

'और इसकी वजह?'

'न तो इस दर्द की कोई वजह होती है, न कोई दवा!'

एक बोझ-सा मेरे माथे पर आ टिका है, हाथ से साफ करती हूं, पर वहीं जमा रहता है, 'पर तूने तो जीते जी इस दर्द की दवा की बातें की हैं.!'

'जिंदा आदमी और मरे हुए आदमी के दर्द और दवा में बेहद फर्क होता है दोस्त!'

मैंने बोझ से सिर झुका लिया है.... मेरे सामने जिंदा और मरे हुए आदमी का दर्द और उस दर्द का फर्क बिंधा हुआ है....

...मैं उसके मतलब और बदलते मतलब की ताब नहीं ला पाती. बात बदल देती हूं—'और मेरे सालों से छिने हुए दोस्त! आज उस हसरत की बात करते हैं, जब हाथ में कलम हो और सीने में अल्फाजों को काठ मार जाये... उस बेचैनी के बारे में—जब ऊपर खामोशी का एक भारी पत्थर पड़ा हो और मन हो कि फटा जाता हो...'

'तेरे मन की यही बेचैनी मुझे पन्नों के बीच भी साल गयी थी और मैंने चाहा था कि मेरी आवज, हमारे बीच बरसों के कुहासे चीरती हुई तेरे कानों में पड़ जाये....'

'तो मेरी तपिश ने तेरी तपिश को ढूंढ़ लिया?'

मैंने रौ में आकर सामने लहराते साये को छूना चाहा, पर अंधेरा अंधेरों में गड़मड़ा गया.

'मेरा जिस्म अब अपने सोचों की धरती में जज्ब होकर खुद भी एक सोच बन गया है....और सोच कभी हाथों में कैद नहीं होते....'

मेरा बढ़ा हुआ हाथ कटा-सा गिर गया.

एक तबील खामोशी उन सारे वर्षों को अपनी गोद में बहला रही थी, जो हमारे दरम्यान पड़े थे...और हमारी सोचों के दरम्यान...

मैं कहना चाहती थी, 'काफ्का! मेरे अजीज! तू तो मरकर एक सोच बन गया है, पर उसका क्या करूं, जो जिंदा भी एक सोच है और हाथों में कैद नहीं होता!'

'यह चलते रहने का हश्र है, जो तेरे पैरों की बेचैनी में लिखा हुआ है...'

कोई हौले से मेरे करीब बोल उठा, 'या खुदा! तू मन की गूंगी हसरत की आवाज भी सुन लेता है?' मेरे गले में कुछ फंस गया. मेरी हरारत भरी आवाज फिर कह उठी, 'तुझे पता है काफ्का....तू मेरे तसव्वुर के कितने करीब उतरा है....और तेरा दर्द मेरे दर्द के करीब....'

A Manuscript page of the Diaries (see page 12).

काफ्का की डायरी की हस्तलिखित पांडुलिपि का एक पृष्ठ

अंधेरे का वो लहराता टुकड़ा मेरे और करीब सरक आया है. ऐसा लगता है, जैसे सांस ले रहा हो.

'हां! पर मेरी बदनसीब दोस्त! मेरे पैरों को उस जमीन का शाप लग गया था, जो उनके नीचे थी....और तेरे पैरों को उन रास्तों पर चलते रहने का, जो कभी उनके अपने नहीं रहे...'

वक्त के घने कुहासों से उभरती आवाज की सपाट और सर्द सच मुझे अंदर तक कंपा देती है.

....अंधेरे साये...अंधेरों में गुम हैं...मैं अपनी पसीजी हुई पेशानी सहलाती हूं—

'काफ्का! ...काफ्का!'

एक सन्नाटा मेरी आवाज से चटक गया है. □

- **के-25, हौज खास एनक्लेव, नयी दिल्ली**

सारिका का अगला अंक होगा

अर्नेस्ट हेमिंग्वे विशेषांक

विवरण पृष्ठ 72 पर

फ्रायड, मार्क्स और आइंस्टाइन के बाद चेक वातावरण में पले चौथे यहूदी काफ्का का संसार टुकड़ों में पूर्णता की तलाश करने वाले खोजी का संसार है. यह संसार वायवी और रहस्यपरक है, जहां यह तो समझ में आता है कि कुछ है जो समझ में नहीं आता, मगर क्या समझ में नहीं आ रहा, यह पकड़ में नहीं आता. प्रस्तुत है, काफ्का के जीवन और लेखन को विश्लेषित करती हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि-आलोचक कैलाश वाजपेयी की टिप्पणी.

चौथा यहूदी : काफ्का

▣ कैलाश वाजपेयी

फ्रायड, मार्क्स और आइंस्टाइन, इन्हीं तीन मनीषियों की अभूतपूर्व उपलब्धियों का परिणाम है कि सभ्यता ने कम समय में वह पा लिया है, जिसे प्राप्त करने के लिए उसे सैकड़ों वर्ष और संघर्ष करना पड़ता. यह विचित्र संयोग है कि ये तीनों के तीनों महापुरुष यहूदी हैं और जिनके सिद्धांतों ने चिंता को वैज्ञानिक दिशा दी है. मार्क्स ने अगर मनुष्य अथवा जीवनशैली की जड़ की ओर संकेत किया तो फ्रायड ने भीतर के समस्त तंतुजाल से उभरने वाले उस अंधड़ को पकड़ा, जो मनुष्य के तमाम रवैये के पीछे 'काम' के रूप में विद्यमान है. आइंस्टाइन ने पदार्थ (जिसकी महत्ता की ओर कार्ल मार्क्स काफी पहले इशारा कर चुका था) से एक कदम आगे जाकर ऊर्जा के सिद्धांत द्वारा मनुष्य की गरिमा को सही परिप्रेक्ष्य दिया. मगर इन तीनों यहूदी चिंतकों से बिल्कुल अलग और अकेला है काफ्का—चौथा यहूदी—जिसकी कलम जिंदगी भर आदमी की संवेदना को पकड़ने और उसे रूपाकार देने में व्यस्त रही. इस चौथे यहूदी को अगर कविता की भाषा में आलेखित किया जाये तो कहा जा सकता है कि वह जिंदगी के सारे आयामों से जुड़ा वह धागा है, जो लगातार थर्राता रहा.

काफ्का का संसार टुकड़ों में पूर्णता की तलाश करनेवाले खोजी का संसार है. यह संसार वायवी और रहस्यपरक है, जहां यह तो समझ में आता है कि कुछ है, जो समझ में नहीं आता, मगर क्या समझ में नहीं आ रहा, यह पकड़ में नहीं आता.

काफ्का के पात्र भयभीत पात्र हैं. वे सिर्फ संकेत करते हैं, मगर उनकी भाषा, उनकी प्रतिक्रियाएं, सबकी सब एक महाविडंबना का आभास देकर और अधिक गुह्य होती चली जाती हैं. तब फिर काफ्का को समझने की कुंजी क्या हो? यह कहते हुए अजब लग रहा है कि काफ्का के बेबूझ होते चले गये मनोविज्ञान के पीछे अगर खुद उसकी बीमारी का बहुत बड़ा हाथ है तो उस धर्म का भी सहयोग उसमें शामिल है जिसे जूडाइज्म कहा जाता है और जिसमें ईश्वर दयालु कम, क्रोधी और प्रतिशोधी अधिक है. काफ्का ने कम लिखा है. उसकी कहानियों में 'द जजमेंट' और 'मैटामॉरफोसिस' सबसे ज्यादा चर्चित हुई. 'इन द पैनल कॉलोनी' का प्रकाशन सन् 1919 में हुआ, जबकि अपने 'द ट्रायल' 'द कासल' और 'अमेरिका' के विषय में तो वह यह लिखकर ही मरा कि उन्हें प्रकाशित न किया जाये.

मैंने कहा कि काफ्का में बीज थे जूडाइज्म के, जबकि प्रभावित उसे किया था सरेन कीर्केगार्द के चिंतन ने. कीर्केगार्द जूडाइज्म के ठीक विपरीत बैठता है, और यही वह विरोध है, जिसे सायको सायबरनेटिक्स समस्त उद्विग्नता की जड़ मानती है. मगर काफ्का के मनोविज्ञान को इतना ग्रंथित, इतना अस्पष्ट, मगर साथ ही आकर्षक बनाने वाली कुछ और भी बातें हैं, जिनकी ओर ध्यान दिया जाना जरूरी है. जिनमें क्रोधी प्रतिशोधी ईश्वर के बाद स्वयं काफ्का का पिता है, जो मूलत: एक हृदयहीन और शुष्क व्यक्ति था.

तपेदिक की बीमारी के अतिरिक्त यह एक तरह का सांस्कृतिक अलगाव है, जो जर्मनी में काफ्का ने महसूस किया होगा. फासिज्म और नौकरशाही के शैतानी पंजे तो खैर हम सभी जानते हैं, काफ्का के समय में कितने दमघोंटू रहे होंगे. मगर सवाल यह है कि पारंपरिक साहित्य की तरह काफ्का अपनी कहानियों और उपन्यासों में अनुभूति की तमाम सघनता के बावजूद इतना सांकेतिक, इतना अस्पष्ट क्यों है? प्रोफेसर पास्कल जैसे काफ्का के शुभचिंतक लाख कहें कि काफ्का की अस्पष्टता ही उसका गुण है, मुझे ऐसा लगता है, अपने आसपास तमाम विद्रूप का चित्रण करते हुए काफ्का ने यह जरूरी समझा होगा कि सब कुछ खुलासा कर देने से, क्योंकि सौंदर्य और कुरूपता दोनों की प्रभावात्मकता कम हो जाती है, इसीलिए विद्रूप की धार

बनाये रखने के लिए क्यों न पूरे माहौल को अस्पष्ट और प्रतीकात्मक या सांकेतिक कर दिया जाये. मगर काफ्का की प्रतीकात्मकता के परिणाम यह हुए हैं कि प्रत्येक पाठक के लिए काफ्का का अर्थ बिल्कुल उसका अपना हो गया. दूसरे शब्दों में जितने पाठक हैं, उतने काफ्का हैं. किसी को उसमें बड़ा विनोदी दीख पड़ता है तो किसी को बीसवीं शती का सबसे बड़ा त्रासदीकार. किसी को वह घुटन देता है तो किसी को विरेचना. मगर असली काफ्का कौन है, वह जिसे कामू ने अपनी 'द मिथ ऑव सिसिफस' में प्रस्तुत किया है या वह जिसे एडविन मूर ने प्रस्तुत किया है, यह कहकर कि वह आदमी के रवैये और नियति की पूरंपट्ट अपरिभाषेयता को समझनेवाला पहला कलाकार है.

दरअसल काफ्का एक प्रकार की आध्यात्मिक निराशा की उपज है. उसका जोजेफ 'क' जब मरता है; तो 'कुत्ते की तरह' सिर्फ यही तीन शब्द बोलता है. इसी तरह जब पैनल कॉलनी मरता है तो लोहे की नोकीली छड़ उसके माथे पर घुसी होती है. इसी तरह ग्रेगर सम्सा कूड़े की लहर में बह जाता है और जार्ज बेंडेमन पुल पर से नदी में गिरकर विलीन हो जाता है. काफ्का के रचना संसार में तमाम मौतें बार-बार यह याद दिलाने के लिए हैं कि अंततः विजय बुराई की होती है अथवा फिर वह, जिसे नियति कहा जाता है, मूलतः क्रूर है. काफ्का की इस अवधारणा के पीछे जूडाइज्म और ईसाइयत का सारा संघर्ष है, जिनमें से किसी के साथ काफ्का अपना तालमेल नहीं बिठा पाया. कुछ अपने संस्कारों के कारण, कुछ अपने समय की परिस्थितियों के कारण और कुछ अपने ऊपर पड़े कीर्कगार्द के चिंतन के प्रभाव के कारण.

यहूदियों के मंदिर साइनेगॉग में साधारण जन का प्रवेश वर्जित है. आदमी के समस्त जीवन की निराशा का केंद्र है साइनेगॉग के द्वार में प्रवेश पाने की उत्कट अभिलाषा और द्वार पर प्रवेश निषिद्ध लिखा होने के बावजूद, मृत्यु से पूर्व मिलने वाला यह संदेश कि 'यह द्वार था केवल तेरे लिए ही'. काफ्का की कृतियों में यह द्वार अंत तक खुला मिलता है और नियति द्वारा आयोजित क्रूर मृत्यु के समय उपर्युक्त वचन के साथ बंद भी हो जाता है.

खुले द्वार और वर्जित प्रवेश और मृत्यु के समय बोले गये वचन और फिर बंद हो जाता द्वार, कुल मिलाकर काफ्का के कलाकार का यही संकट है, जिसे सही मायने में एक तरह का धर्मसंकट कहा जा सकता है. उसकी कृति 'द ट्रायल' में यह संकट काल के स्तर पर उभरकर सामने आया है, जबकि 'द कासल' में यह संकट दिक् यानी स्पेस के संदर्भ में. पहली कृति मनुष्य की निराशा या हताशा को आत्मा के परिप्रेक्ष्य में उजागर करती है, जबकि दूसरी कृति में यह निराशा सांसारिक संदर्भ में आलोकित हुई है. पहली कृति में न्यायालय, जहां आत्मा के विरुद्ध फैसला सुनाया जाता है, स्वयं बुराई का केंद्र है और 'आत्मा का पाप' क्या है, यह विषय अस्पष्ट छोड़ दिया गया है. इस न्यायालय में तर्क एक लंबी उबाऊ चक्करदार भूलभुलैया से होकर गुजरता है और अंततः बिना किसी ठोस आधार के एक शाम पुलिस वर्दीधारी दो लोग जोजेफ 'क' को शहर से बाहर ले जाते हैं, जहां उसके सीने में चाकू घोंप दिया जाता है. जोजेफ 'क' 'एक कुत्ते की तरह' कहता हुआ इसीलिए मरता है, क्योंकि द्वार को बंद हो जाना है. द्वार बंद हो जाने के लिए ही खुला है 'वर्जित प्रवेश' के आदेश के साथ.

'द कासल' में 'नौकरशाही को आदेश कहां से मिलते हैं, यह खुलासा नहीं किया गया. (बुराई को पैना बनाने के लिए)

नौकरशाही का सारा कार्य व्यापार नितांत बेहूदगीभरा है, जिसमें बेमानी विज्ञप्तियां, निरर्थक आदेश कहीं से चलकर कहीं पहुंचते चले जाते हैं, मगर शासन की वैधता पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं लगता. विशाल फलक पर यहां काफ्का ईश्वरीय व्यवस्था पर व्यंग्य करता-सा जान पड़ता है. जिसकी बनायी इस दुनिया में आदमी मध्यस्थों द्वारा प्रताड़ित किया जाता है. (साइनेगॉग में साधारण जन का प्रवेश पुजारियों ने वर्जित कर रक्खा है) परिणाम यह होता है कि तमाम सदाशयता के बावजूद साधारण आदमी मरता द्वार पर ही है. ईश्वर उसके लिए अपरिभाषेय का अपरिभाषेय रह जाता है.

आदमी जब संसार से निराश होता है तो धर्म की ओर मुड़ता है, मगर धर्म से निराश हुआ आदमी कहां जाये, काफ्का की सारी मुश्किल इसी निराशधर्मिता में छिपी है, जिसे इस दृष्टि से समझने की कोशिश कम से कम ईसाई आलोचकों ने नहीं की. उसमें आधुनिक जीवन की विडंबना, तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों आदि की छवि देखने के चक्कर में वे भूल गये कि काफ्का साधारण के माध्यम से विराट को पकड़ने की कोशिश कर रहा था. वह खंड में पूर्णता का आभास पाने के लिए प्रयत्नशील था और क्योंकि बचपन से वह परायेपन के भाव से ग्रस्त था, इसीलिए अपनी ऋणात्मक यात्रा पर चलते आते एक दिन ऐसा भी आया कि वह खुद अपने पार चला गया, यह कहकर कि उसकी पांडुलिपियां जला दी जायें.

काफ्का ने खुद यह काम क्यों नहीं किया? जब जलवाना ही था अपनी कृतियों को तो होना यह चाहिए था कि काफ्का स्वयं जलाकर नष्ट कर देता.

यही वह स्थल है, जहां काफ्का अपना अतिक्रमण करता जान पड़ता है. पहले तो यह कि 'साइनेगॉग' के वर्जित प्रवेश-द्वार के विरोध में काफ्का स्वयं को लभ्य रखना चाहता था. दूसरे यह कि ईश्वर के विरोध में, विशेषतः उस ईश्वर के विरोध में जो अपनी सृष्टि के प्रति बेखबर है (तभी तो बुराई की विजय होती है) काफ्का अपने आपको भिन्न और बड़ा सिद्ध करना चाहता था. तीसरे यह कि काफ्का को मनुष्य की मूलभूत अच्छाई पर भरोसा था या रहा होगा. तभी तो उसने अपने मित्र मैक्स ब्रॉड पर यह जिम्मेदारी सौंपी, ताकि वह उन्हें छपवाने में न चूके. चौथे यह कि काफ्का की निराशा आत्यंतिक और संपूर्ण नहीं थी. उसके नीचे कहीं न कहीं जिजीविषा और आस्था विद्यमान थी.

और अंतिम महत्वपूर्ण बात यह कि स्वयं ईश्वर भी अपनी सृष्टि नष्ट करते हुए झिझकता है, फिर काफ्का तो हड्डी-मांस का बना पुतला था. □

काफ्का से गुस्ताव यानोख की बातचीत

काफ्का के साथ लेखक गुस्ताव यानोख की बातचीत अक्सर राह चलते-चलते होती थी. गुस्ताव यानोख अपने लेखन के शुरुआती दौर में थे, जब उनका काफ्का से परिचय हुआ. और जैसा कि कई बार एक मंजे हुए लेखक और एक नवोदित जिज्ञासु लेखक के बीच का रिश्ता होता है, गुस्ताव रोज शाम काफ्का के दफ्तर पहुंच जाते और फिर वहां से वे दोनों टहलने निकल पड़ते. टहलते हुए ही दुनिया भर के विषयों पर बड़े सहज और आत्मीय ढंग की बातचीत होती रहती. कई बार इस बातचीत से यह भी लगता है कि गुस्ताव यानोख काफ्का को कुरेदते भर थे और उसके बाद की सारी बातचीत काफ्का के स्वगत कथन जैसा रूप धर लेती थी. इस बातचीत से यह तो स्पष्ट होता ही है कि जहां काफ्का की कथाओं का परिवेश बहुत कुछ विसंगतियों, आंतरिक लोक की तकलीफदेह स्मृतियों और स्वप्न रूपकों की जटिलताओं से निर्मित है, वहां सामान्य बातचीत में वे बहुत स्पष्ट, बेबाक और यथार्थ जीवन की ठोस घटनाओं और प्रसंगों से गहरे जुड़े हुए थे. फंटेसी के भयानक संसार को भाषा देने वाले कलाकार काफ्का की सामान्य ढंग की यह बातचीत इसीलिए एक विशेष संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है.

एक दिन पिताजी ने मुझसे कहा कि अगले दिन मैं उनके ऑफिस में आकर उनसे मिलूं. क्यों बुला रहे हैं, इसका कारण उन्होंने नहीं बताया. दरअसल उन्हें पता चल गया था कि मैं कविताएं लिखता हूं. हमारा बिजली का बिल अधिक आने लगा था. इसका कारण था कि मैं देर रात तक जागा करता था और देर रात तक जागने का कारण जानने के लिए पिताजी ने एक दिन मेरे स्कूल जाने के बाद मेरी किताबों की तलाशी ली तो मेरी कविता की नोटबुक उन्हें मिल गयी. काफ्का उनके दफ्तर में काम करते थे (यह बात उस समय तक मुझे पता नहीं थी). उन्होंने वे काफ्का को दिखायीं, तो काफ्का ने मुझसे मिलने की इच्छा प्रकट की.

काफ्का ने मेरी ओर अपना हाथ बढ़ाया, कहने लगा, "शरमाने की कोई बात नहीं है. मेरा भी बिजली का बिल काफी अधिक आता है." इसके बाद उसके ठहाके ने मेरी हिचक तोड़ दी.

"तुम्हारी कविताएं बहुत शोर करती हैं." फ्रैंज काफ्का ने मेरे पिताजी के जाने के बाद मुझसे कहा, "वे युवावस्था की नाजायज संतान हैं और जीवन शक्ति की अधिकता की ओर संकेत हैं. इसलिए यह शोर सुंदर तो है, पर इसका कला के साथ कोई रिश्ता नहीं है. एकमात्र निश्चित चीज है वेदना," उसने विश्वास के साथ कहा, फिर पूछा, "तुम लिखते किस समय हो?"

यह सवाल भी चकित करने वाला था, इसलिए मैंने जल्दी से कह दिया, "शाम को या रात को. दिन में तो शायद ही कभी. दिन में मैं लिख नहीं सकता."

"दिन एक बहुत बड़ा इंतजाम है."

"मुझे लिखते समय प्रकाश, फैक्ट्री, घरों, सड़क के ऊपर की खिड़कियों से बहुत बाधा महसूस होती है. प्रकाश से तो सबसे ज्यादा. प्रकाश से मेरा ध्यान भंग होता है."

"यह तुम्हें तुम्हारे भीतरी अंधकार से दूर ले जाता है. यदि प्रकाश किसी को आच्छादित कर ले तो ठीक रहता है. अगर ये भयानक निद्राविहीन रातें न होतीं तो मैं कभी न लिख पाता. ये रातें ही मुझे हमेशा मेरे अंधेरे एकांत में बुला लाती हैं."

मैंने कहा, "तुम्हारी कहानी के नायक का नाम साम्सा है, जो काफ्का का ही गुप्त संकेत लगता है. दोनों में पांच-पांच शब्द हैं. साम्सा में 'एस' का वही स्थान है, जो काफ्का में 'के' का और 'ए' भी...."

काफ्का ने मुझे बीच में ही रोक दिया, "यह गुप्त संकेत नहीं है. साम्सा मात्र काफ्का ही नहीं, बल्कि काफ्का के अतिरिक्त और कुछ नहीं है. 'मेटामॉरफॉसिस' कोई आत्मस्वीकृति नहीं है, यद्यपि किसी सीमा तक है भी."

"मैं इसके बारे में कुछ नहीं जानता."

"अपने ही घर में कीड़ों की बात करना क्या एक नाजुक और अप्रिय मसला है?"

"अच्छे समाज में तो यह सामान्य नहीं है."

"तुम देख रहे हो, मैं कितना बदतमीज हूं." काफ्का मुस्कराया. वह इस विषय को खत्म ही कर देना चाहता था, पर मैं नहीं. मैंने कहा, "मुझे लगता है कि तमीजदार और बदतमीज का भेद यहां लागू नहीं होता. मेटामॉरफॉसिस' एक भयंकर स्वप्न है. एक भयंकर अवधारणा."

काफ्का खड़ा रहा. "स्वप्न यथार्थ का आभास देते हैं, जबकि अवधारणा के साथ यह बात नहीं है. यह जीवन की भयंकरता है, कला का आतंक.

▣

लाइपजिग के एक प्रकाशक कुर्ट वोल्फ के बारे में मैंने काफ्का को बताया कि एक दिन सुबह आठ बजे उसने रवींद्रनाथ टैगोर का एक अनुवाद लौटाया और दो घंटे बाद ही टैगोर को नोबेल पुरस्कार मिलने की घोषणा सुनकर केंद्रीय डाकघर से उस अस्वीकृत पांडुलिपि को वापस लेने के लिए आदमी भेज दिया.

"उसका टैगोर को वापस करना ही मुझे असंगत लगा." काफ्का ने धीरे से कहा, "टैगोर, कुर्ट वोल्फ से कुछ ज्यादा भिन्न नहीं हैं."

"एक स्कूल मास्टर, शायद?"

"स्कूल मास्टर?" काफ्का ने गंभीरता से दोहराया.

"नौसिखियाई लबादे में रहस्यवादी?"

"कुछ उसी तरह का!" हम दोनों हंस पड़े. मैंने काफ्का को भगवद्गीता का जर्मन अनुवाद दिया. □

● प्रस्तुति : सुरेश उनियाल

काफ्का और गुस्ताव यानोख के बीच कुछ बातें और

फ्रैंज काफ्का से एक बार उनके पिता के मालगोदाम के बाहर शाम को पांच बजे मिलना तय हुआ. हम लोग हरादश्चित की तरफ को निकलना चाहते थे, पर काफ्का की तबीयत ठीक नहीं थी. उन्हें सांस लेने में कुछ तकलीफ महसूस हो रही थी, इसलिए हम लोग निकट ही अलस्तादृतर रिंग की ओर निकल पड़े. 'काब्ज बुक शॉप' के बाहर हम लोग रुककर शो-विंडों में सजायी गयी पुस्तकों को देखने लगे. मैं अपना सिर दायें और बायें झुकाकर किताबों पर छपे नाम पढ़ने की कोशिश कर रहा था. शायद काफ्का को यह देखकर मजा आया और वे हंसने लगे, "तो आप भी पुस्तकों के इस कदर दीवाने हैं कि बहुत ज्यादा पढ़ने से सिर इधर-उधर डोलने लगा है?"

"आप सच कह रहे हैं. मुझे नहीं लगता कि किताबों के बिना मैं जिंदा रह सकता हूं. मेरे लिए वही समूची दुनिया है."

काफ्का ने अपनी भौंहें सिकोड़ीं, "यह गलत है. कोई भी किताब दुनिया की जगह नहीं ले सकती. यह असंभव है. जिंदगी में हर चीज का अपना अर्थ और उद्देश्य है और उस चीज का स्थायी रूप से कुछ और विकल्प हो ही नहीं सकता. ठीक वैसे ही जैसे कोई दूसरे के व्यक्तित्व के द्वारा अपने निजी अनुभवों का मालिक नहीं बन सकता. किताबों की तुलना में दुनिया कुछ इसी तरह से है. कोई आदमी यदि जिंदगी किताबों में बंद करना चाहता है तो यह वैसे ही है, जैसे कि चहचहाते हुए पक्षी को पिंजरे में बंद करना. यह अच्छा नहीं है. उल्टे, किताबों में पायी जानेवाली अमूर्तता के कारण कोई सिर्फ ऐसी व्यवस्था ही निर्मित कर सकता है जो सीकचों की तरह हो. दार्शनिक अक्सर उन चमकदार पक्षियों की तरह लगते हैं, जो अपने-अपने पिंजड़ों में बंद हैं."

▣

काफ्का से मिलने एक बार जब मैं उनके ऑफिस में गया तो उसी समय उनकी कहानी 'इन दि पैनल सेटलमेंट' की प्रूफ कॉपी डाक से आयी थी. काफ्का को मालूम पड़ा कि यह उनकी अपनी ही पुस्तक है तो वे कुछ झेंप-से गये.

उन्होंने अपनी मेज की दराज खोली. मुझे देखा और फिर दराज वापस बंद कर दी. पुस्तक मुझे देते हुए बोले, "शायद तुम यह किताब देखना चाहोगे?"

मैंने वह पुस्तक खोली. जल्दी से छपाई और कागज आदि पर एक निगाह डाली और पुस्तक उन्हें लौटा दी. झेंपने का कारण मेरी समझ में आ गया था.

"बहुत अच्छे ढंग से छापी गयी है," मैंने कहा, "यह सचमुच ड्रगुलिन प्रेस का प्रतिनिधि प्रकाशन है. इससे आपको बहुत संतोष होना चाहिए डॉक्टर."

"नहीं, वैसा नहीं है." फ्रैंज काफ्का ने अन्यमनस्क स्वर में कहा और लापरवाही से वह पुस्तक मेज की दराज में डाल दी, "अपने कुछ भी घसीटे हुए का प्रकाशन हमेशा मुझे अशांत कर देता है."

"तब आप उसे प्रकाशित ही क्यों कराते हैं?"

"बस, ऐसा ही कुछ समझ लो. मैक्स ब्राड, फेलिक्स वेल्स (एक दार्शनिक और प्रकाशक, जो कि प्राग में यहूदियों के एक साप्ताहिक का संपादक था) मेरे मित्र हैं और मैं जो कुछ भी लिखता हूं, उसे ये लोग अपने कब्जे में कर लेते हैं और बाद में प्रकाशक से बातचीत कर मुझे चकित कर देते हैं. मैं उन्हें नाराज नहीं करना चाहता और इस तरह से वह सब कुछ प्रकाशित हो जाता है, जो वास्तव में मेरे निजी नोट्स हैं या एक किस्म के विषयांतर हैं. मेरी अपनी मानवीय कमजोरियों के प्रमाण न सिर्फ छप गये हैं, बल्कि बिक भी रहे हैं, सिर्फ इसलिए कि मेरे दोस्तों ने, मैक्स ब्राड जिनका नेता है, इन नोट्स को साहित्य में बदल देने की ठान ली है और मुझमें इतनी शक्ति नहीं है कि अपने अकेलेपन के इन प्रमाणों को नष्ट कर डालूं."

फिर कुछ देर बाद काफ्का एक बिलकुल दूसरी आवाज में बोले, "मैंने अभी जो कुछ भी कहा है, उसमें बहुत ज्यादा अतिशयोक्ति है और मेरे दोस्तों के खिलाफ दुर्भावना भी. दरअसल मैं स्वयं इतना भ्रष्ट और बेशर्म हूं कि मैं खुद ही इन चीजों के प्रकाशन में अपना सहयोग देता हूं. मैं अपनी कमजोरियों के लिए एक बहाना ढूंढने की कोशिश में, परिस्थितियां वास्तव में जैसी हैं, उनसे उन्हें बहुत ज्यादा मजबूत बना देता हूं. यह निश्चित ही एक किस्म का छल है.

▣

मैं काफ्का के साथ बंदरगाह वाले इलाके में खड़ा था और रेल पटरी पर बने पुल पर से कोयले से लदे हुए ट्रक गुजर रहे थे. मैंने उन्हें बताया कि युद्ध के अंतिम वर्ष में किस तरह से कोरोलिनेन्टल की गलियों से, जहां पर मैं उन दिनों रहता था, बच्चे जिज्कावर्ग तक घूमते-घामते चले जाते थे और फिर वहां पर धीरे-धीरे रेंगती हुई मालगाड़ियों पर ऊपर से कूद पड़ते थे. मालगाड़ी के खुले डिब्बे कोयलों से लदे रहते थे और बच्चे मुट्ठी में भर-भरकर उन्हें बाहर फेंकते थे. बाद में उन्हें जमा कर लेते थे और अपने साथ लाये बोरों में भरकर घर ले जाते थे. मैं काफ्का को बता रहा था कि कैसे एक बार मेरे साथी कैरल बेंडा

बेटा था और जिसकी आंख में भेंगापन था—रेल के पहियों की चपेट में आ जाने से देखते ही देखते टुकड़े-टुकड़े हो गये थे. काफ्का ने पूछा, "क्या उस वक्त तुम वहां थे?"

"नहीं, मैंने यह बात दूसरे बच्चों के मुंह से सुनी थी."

"तुम इन बच्चों के 'कोयला अभियान' में भाग नहीं लेते थे?"

"लेता था. मैं भी कई बार गया था उन लोगों के साथ, पर मैं वह सब दूर से ही देखता था. मैंने कभी कोई कोयला नहीं चुराया. घर में हमारे पास काफी तादात में कोयला था."

"ताप और गर्माहट के लिए किया गया कोई भी संघर्ष, जो कि जिंदगी के लिए बहुत जरूरी होता है, हमेशा बहुत उत्तेजक होता है." काफ्का ने मेरे ही शब्दों पर बल देते हुए कहा, "यह जिंदगी और मौत के बीच एक निर्णय होता है और कोई भी केवल दर्शक बनकर कैसे रह सकता है! वहां छिपकर बैठने के लिए कहीं कोई पेड़ या झाड़ी नहीं है. जिंदगी जिज्कावर्ग की तरह नहीं है. कोई भी इसके पहियों की चपेट में आ सकता है, और दरअसल कमजोर और गरीब, उन मजबूत और अमीर लोगों की बजाय जल्दी चपेट में आ जाते हैं, जो गर्म हैं और जिनके घर पर पर्याप्त मात्रा में कोयला है, और पहियों के नीचे आने के बहुत पहले ही कमजोरी जिन्हें स्वयं ही बुरी तरह से तोड़ देती है."

"आप सच कह रहे हैं," मैं बोला, "बेंडा भी कभी-कभी कुछ देर तक झाड़ी के पीछे छिपकर बैठा रहता था और तब उसके गालों पर आंसू बहते रहते थे. वह अक्सर ही बहुत डरा हुआ रहता था. वह कोयले चुराना नहीं चाहता था, वह सिर्फ इसलिए वहां आता था, क्योंकि दूसरे बच्चे उसे चिढ़ाते थे, और क्योंकि एक बार कोयला न लेकर जाने पर उसकी मां ने झाड़ू से बहुत मारा था."

"बस यही, बस यही तो जानना था." काफ्का ने लगभग चीखते हुए भावावेश में अपने हाथ झटकते हुए कहा, "तुम्हारा साथी, वह छोटा-सा बच्चा कैरल बेंडा किसी मालगाड़ी के द्वारा नहीं, बहुत पहले ही अपने माहौल में प्यार के अभाव में टुकड़े-टुकड़े हो गया था. तबाही का रास्ता अपने अंतिम मुकाम से कहीं ज्यादा निष्ठुर होता है. चलती हुई मालगाड़ी पर दुस्साहसपूर्ण ढंग से कूदने जैसे हिंसात्मक कर्म से बहुत अधिक कभी भी कुछ नहीं मिलता था, और इस बात को वह जानता था. एक आदमी कोयले के टुकड़े बटोरता है जो कि शीघ्र ही राख हो जाते हैं. और उसके बाद. . . उसके बाद तुरंत ही वह फिर उसी सर्दी में खड़ा हुआ ठिठुर रहा होता है. उसकी इस तरह से बार-बार कूदने की ताकत लगातार कम होती चली जाती है, असफलता का डर बढ़ता चला जाता है. और फिर एक दिन याचना बेहतर लगने लगती है. वह सोचता है कि कोई ऐसा होता, जो कोयले के कुछ टुकड़े उसकी ओर उछाल देता."

"यह सच है," मैं बीच में ही बोला, "कोयला गिरोह का यह अभियान शुरू में भीख मांगने के रूप में ही था. बच्चों ने मालगाड़ो के खुले हुए डिब्बों पर कूदना तभी शुरू किया, जब और कोई चारा नहीं रहा."

काफ्का बोले, "यही बात थी, बच्चों ने कूदने का दुस्साहस तभी किया, जब कोयलों के मुफ्त में मिलने की कोई संभावना नहीं रही. उनकी उम्मीदें चुक गयीं.

▣

मेरे पिता ने मेरे जन्म दिन पर मुझे ज्योर्ज त्राक्ल की कविताओं की एक पुस्तक भेंट की थी. फ्रैंज काफ्का ने बताया कि त्राक्ल ने युद्ध की भीषणताओं से बचने के लिए जहर खाकर आत्महत्या कर ली थी.

"मृत्यु की तरफ एक भगोड़ा!" मैंने फब्ती कसी.

"वह बहुत अधिक कल्पनाशील था," काफ्का बोले, "और इसलिए वह उस युद्ध को बर्दाश्त नहीं कर सका, जो कि सबसे अधिक भयानक कल्पनाहीनता से जन्मा था."

फ्रैंज काफ्का मेरे द्वारा दी गयी अल्फान्स पेक्विट की पुस्तक 'द स्पिरिट ऑफ रशियन रिवोल्युशन' के पन्ने पलट रहे थे.

"क्या आप इसे पढ़ना चाहेंगे?"

"नहीं धन्यवाद." और काफ्का ने वह पुस्तक मुझे लौटा दी. "फिलहाल मेरे पास समय नहीं है. यह दयनीय है. रूस में लोग एक पूरी तरह न्यायपूर्ण दुनिया निर्मित करने की कोशिश कर रहे हैं. यह एक धार्मिक मामला है."

"लेकिन बोल्शेविक क्रांति धर्म का विरोध करती है."

"इसलिए कि वह स्वयं में एक धर्म है. ये हस्तक्षेप, क्रांतियां, अवरोध-क्या हैं ये सब? ये उन विशाल और क्रूर धार्मिक युद्धों के छोटे-छोटे रिहर्सल हैं, जो पूरी दुनिया का सफाया कर देंगे."

▣

हम लोग एक बार युद्ध के बाद होने वाले ढेरों अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों की चर्चा कर रहे थे.

फ्रैंज काफ्का बोले, "इन महान राजनीतिक सम्मेलनों का बौद्धिक स्तर किसी सामान्य-सी कॉफी हाऊस की चर्चा जैसा ही होता है. लोग चूंकि बहुत कम काम की बातें कहते हैं, इसलिए बहुत जोर से और विस्तार से बोलते हैं. वास्तविक और दिलचस्प बातें तो पर्दे के पीछे होने वाली दुरभिसंधियां हैं, जिनके बारे में एक शब्द भी नहीं कहा जाता."

"तो क्या आपके विचार में प्रेस सत्य का वाहक नहीं है?"

काफ्का के होठों पर एक पीड़ाभरी मुस्कान दौड़ गयी, "सच, जो कि जिंदगी में बहुत थोड़ी-सी वास्तविक रूप से महान और मूल्यवान चीजों में से है, लाया नहीं जाता. मनुष्य इसे एक उपहार की तरह से पाता है, जैसे कि सौंदर्य या प्रेम. लेकिन समाचार पत्र एक खरीदी-बेची जाने वाली वस्तु है."

"इसका अर्थ तो यह हुआ कि प्रेस मनुष्य की मूर्खताओं का दलाल है?"

काफ्का हंसे. उनके चेहरे पर एक उल्लास-सा छा गया.

"ऐसा नहीं है. जिंदगी में हर चीज, यहां तक कि झूठ भी सच को आगे बढ़ाता है. छायाएं सूरज को मैला नहीं कर पाती हैं." ▣

● प्रस्तुति : विजय कुमार

मील का पत्थर

नचिकेता होने की नियति : फ्रैंज़ काफ्का

◘ राजेंद्र यादव

काफ्का की कहानियों के क्रम में हम सबसे पहले दे रहे हैं 'चीन की दीवार' जो काफ्का की सर्वाधिक चर्चित कहानियों में एक है. इसके बहाने हिंदी के वरिष्ठ कथाकार राजेंद्र यादव ने काफ्का के संपूर्ण रचना संसार की पड़ताल की है. पहले प्रस्तुत है टिप्पणी और इसके बाद उनके द्वारा अनूदित काफ्का की कहानी 'चीन की दीवार'.

"नरक की अतल गहराइयों में सांस लेने वाले ही परम निष्पाप और निश्छल स्वरों में गा पाते हैं. उन्हीं के तो गीत होते हैं जिन्हें हम ऋषियों और देवताओं की वाणी के रूप में याद करते हैं!" काफ्का के एक अप्रकाशित पत्र की ये पंक्तियां ऐरिख हैलर के अनुसार नीत्से की ही अनुगूंज है : "जिस किसी ने भी नये स्वर्ग की रचना की है, उसने शक्ति और प्रेरणा अपने भीतर के नरक से ही पायी है!"

लेकिन इन दोनों ही वक्तव्यों में अपने को अतिक्रमित करने की जैसी ध्वनि है, क्या वह काफ्का की रचनाओं में मिलती है? मुझे तो खुद उसका रचना-संसार एक अजीब दमघोटू, गहरी अंधेरी गुफा जैसा लगता है जहां धुंध और धुएं में लोग मानो सोते हुए चल रहे हों—कहीं यातनाएं देने वाली नयी-नयी मशीनें हैं तो कहीं कीड़ों और कुत्तों में बदलते हुए इंसान, बीहड़ जंगलों और ऊबड़-खाबड़ पगडंडियों में टक्करें खाता अमीन है तो गड्ढा खोदकर उसमें छिपा बैठा भयभीत आदमी! विचित्र दु:स्वप्न है, जहां गर्मी से पिघले मोम के पुतलों जैसे लोग और चीजें टूट-फूटकर ऐंठ गये हैं—बाहर और भीतर का सब कुछ उलट-पलट गया है. मारक्विस-द-साद की दुनिया भी रोंगटे खड़े कर देने वाले भयानक नरक की ही तस्वीर सामने लाती है—जैसे आप किसी कसाई-घर या रवि वर्मा के चित्रों में दिखाये गये कुंभी-पाक के बीचों-बीच खड़े हैं. मगर वह शरीर और मांस की दुनिया है और उसमें लोथड़े, हड्डियों, जलते-भुनते चिरांयध भरे कड़ाव, छुरों और नेजों से छूटते खून के फव्वारे, चीखें, कराहें और अट्टहास, खुले संभोग और कोड़ों की बौछारें—यही सब भरा है और इन सबका कर्ता है एक मनमौजी, उच्छृंखल सामंत. काफ्का के पास 'आत्मा के नरक' की दुनिया है और उसका कर्ता कोई नहीं है. ईश्वर को मारा था नीत्शे ने और उसकी जगह एक निराकार राक्षस को ला-बैठाया काफ्का ने. इसलिए उसके यहां हिंसा करने वाला कोई नहीं है, उस हिंसा को भोगने वालों का जमघट है. अगर काफ्का की रचनाओं में भयानक 'आध्यात्मिक' यंत्रणा और बीहड़ दार्शनिक अर्थवत्ता न होती तो बड़ी आसानी से उन्हें एडगर एलेन पो की कहानियों के साथ रखा जा सकता था, जहां कहीं अंधेरे अंधे कुएं में, तीखा धारदार चमकता पेंडुलम छाती को खुरचता हुआ हिल रहा है तो कहीं खूंखार बिल्ली की भूखी आंखें घूरती हुई निकट आती जा रही हैं... काफ्का के पात्र भी किसी अदृश्य, निराकार और निर्लिप्त सत्ता की चौपड़ पर रेंगते-घिसटते और यंत्रणा पाते लोग हैं. वे पीड़ा देने वाले की प्रत्यक्ष अनुपस्थिति और व्यवस्था के रूप में निरंतर उपस्थिति के दुहरे पाटों में गहरी मर्मांतक यातना भोगने वाली, पिसती आत्मा की निश्शब्द चीत्कारें हैं. मानवीय संबंधों से लेकर किसी भी दैवी कृपा की आस्था से छिन्न, मगर भीतरी वास्तविकता के प्रति अति-प्रबुद्ध व्यक्ति के घुटने-भरे अलगाव के शून्य में जीते हुए, उस तक पहुंचने के लिए इस बीच की खाई या शून्य से होकर ही गुजरना पड़ता है.

अजीब बात है इस काफ्काई संसार की युक्ति, चीजों के रूप और संबंधों के तर्क इसी हमारी बाहरी दुनिया से लिये गये हैं : हां, स्थितियां और देशकाल बदल गये हैं और किसी दूसरे विस्मय-नक्षत्र में पहुंच जाने जैसा लगता है. 'स्वप्न' में चीजों के रूप या आपसी संबंध तो बदल ही जाते हैं, जो कुछ घटता है, उसका कार्य-कारण जोड़ भी विशृंखलित हो जाता है. काफ्का में ऐसा प्राय: नहीं है, एक स्थिति या सिचुएशन को ले चुकने पर वह सतर्क तार्किकता के साथ उसे विकसित करता है, उसकी परतें खोलता है. सिचुएशन विलक्षण या अभौतिक हो सकती है, मगर उसे बढ़ाने-मोड़ देने और गहरे अर्थों से जोड़ने की प्रक्रिया कहीं कच्ची नहीं है. बाहरी संसार की इसी यथा-तथ्यता को अस्वीकार करने की पद्धति से ही वह मूल्यों की जड़ तक पहुंचता और उन्हें ध्वस्त करता है. हो सकता है जिस विलक्षण, बेहूदा, हास्यास्पद और त्रासद स्थिति की वह सृष्टि करता है उनमें घिर जाना उसके पात्रों का अपना चुनाव न हो. कहां से आती हैं ये अजूबा स्थितियां? क्यों भोगते हैं उसके पात्र एक विकल्पहीनता की पीड़ा? कौन-सा अपराध है जो उनकी आत्मा को घुन की तरह खाता रहता है? इन्हीं सवालों की खोज हमें काफ्का की दृष्टि को कुछ समझने की दिशा दे सकती है!

इसी दृष्टि से काफ्का की 'मांद' कहानी मुझे बार-बार याद आती है. बाहरी दुनिया से जुड़ पाने में असमर्थ या वहां कोई संबंध न बना पाने के कारण, एक नाम और व्यक्तित्वहीन साहब जंगली एकांत की एक मांद में घुसे बैठे हैं और निरंतर इसी तिकड़म में हैं कि कैसे खोद-कुरेदकर इस मांद को इतना सुविधाजनक और सुरक्षित बना लें कि न तो कोई वहां तक आ सके और न उन्हें बाहर निकलने की जरूरत रहे. वे राशन-पानी से लेकर मांद के भीतरी आकार को ऐसा स्वयं-संपूर्ण बना लेना चाहते हैं कि बिना

किसी की शक्ल देखे मजे में इसी बिल में जिंदगी गुजार सकें. इसके लिए मांद के मुहाने को झाड़ी-पत्तों से छिपाने से लेकर आने-जाने में अत्यंत गोपनीयता रखने तक, सारी सावधानियां उन्होंने बरती हैं. और अब लगे हैं 'भीतर' का विस्तार करने में, यत्न से प्राप्त इस 'सुरक्षा' को स्थायी करने में...

अंत में वे कहां जाकर टकराते हैं, फिलहाल इस बात को छोड़ दें और दो बातों पर ही ध्यान दें. नाम-रूप से वंचित इस पात्र का व्यक्तित्वहीन होना और किसी भीतरी खोह में जा छिपने का डर, 'बाहर' से अपनी सुविधा की चीजों को भीतर ले जाकर अपने हिसाब से व्यवस्थित कर लेने की प्रवृत्ति, वहीं आत्म-निर्भर और स्वयं-संपूर्ण होकर बाहर-भीतर को समझने की बेचैनी—यही हैं काफ्का की मानसिक बनावट के सूत्र! मांद के साहब बाहर की दुनिया से क्यों भयभीत हैं? क्यों लोगों के संपर्क से डरते और बचते हैं? चोट खाये हुए हैं या आध्यात्मिक धरातल पर किसी भी संबंध में उनकी आस्था ही नहीं रह गयी है? आखिर क्यों अपनी भीतरी दुनिया में ही बने रहना चाहते हैं? क्यों बाहरी चीजों को भीतर ले जाकर अपने ढंग से सजाते हैं और पहेली जैसी स्थिति बनाकर उसका हल या अर्थ खोजने में सिर खपाते रहते हैं? बाहरी डर और भीतरी अंधेरों-एकांत में सुरक्षा पाने की यह जी-तोड़ कोशिश क्या है?

इस मानसिकता को पाने और समझने के सिरे हैं काफ्का की अपनी जिंदगी में. मुझे कथा-साहित्य में काफ्का ही अकेला ऐसा लेखक लगता है जिसका सारा लेखन 'आत्मकथा' और आत्मा की कथा एक ही साथ है. यानी यहां लेखक की भीतरी बुनावट को जाने बिना आप लेखन को समझने की अंतर्दृष्टि ही नहीं पा सकते...दोस्तोयेव्स्की और ताल्स्तोय की दृष्टि उनकी रचनाएं समझने में 'मददगार' है और कामू-सार्त्र की दार्शनिक दृष्टि के माध्यम से ही उनके कथा-साहित्य के अर्थ निकाले जा सकते हैं. मगर संपूर्ण मानसिकता और जिंदगी के संदर्भ में रचना की सारी अर्थ-संपन्नता प्राप्त हो, यह स्थिति सिर्फ काफ्का के साथ ही है. अन्य लेखकों की तरह काफ्का यह नहीं कहता कि उसकी जिंदगी साहित्य के लिए समर्पित है. 'मेरी तो जिंदगी ही मेरा साहित्य है' उसका बार-बार आग्रह यही है. इसी के लिए वह फैलिस बाउर से दोबारा सगाई तोड़ लेता है और बेहद प्यार करने के बावजूद शादी नहीं करता. 'अपनी रचनात्मक प्रतिभा को जीने में बरबाद नहीं करना चाहिए.' यह ज्ञान उसे अपनी किसी शारीरिक कमजोरी से आया या संबंधों के मोह-भंग से, यह कहना तो मुश्किल है. मगर हर सुख-सुविधा और स्वाभाविक जिंदगी से विरक्त होकर तपस्यारत भारतीय ऋषियों का आत्मपीड़क दृष्टिकोण ही काफ्का को तीखी-गहरी संवेदना में एकाग्र होकर लिखने की प्रेरणा देता है. अधिकांश का विश्वास है कि जिंदगी के इस नकार, या लेखन की सारी आध्यात्मिक-बौद्धिक बनावट के पीछे है उसका अपने बाप से संबंध!

उसकी एक काफी लंबी रचना है, 'पिता के नाम पत्र'. यह पत्र शायद कभी पिता को दिया नहीं गया और लेखक की मृत्यु के बाद छपा. इसकी कुछ पंक्तियां गौर करने लायक हैं, 'मेरे पालन-पोषण का आपका जो भयानक प्रभावशाली मगर शायस्ता तरीका रहा है, उसके दबाव ने मुझे एक पल भी चैन से नहीं रहने दिया—गालियां, धमकियां, तानाकशी, जहर-बुझी, तिलमिला देनेवाली हंसी और साथ-साथ ताज्जुब की बात कि आत्मदया भी...लगता है मानो बच्चा अगर मर नहीं गया तो सिर्फ आपकी दया के कारण ही. जैसे आप ही ने उस जैसे अयोग्य को जिंदगी का वरदान दिया हो...जहां तक मेरा सवाल है आप मेरे लिए सर्व-शक्तिमान थे और ऐसा लगता था जैसे आप हर समय इस शक्तिमत्ता को बढ़ाने की ही फिराक में लगे रहते हैं...जिधर से भी देखो, आप महाबली, परम विराट और दैत्याकार ही लगते थे बाद में जिंदगी-भर हम सब एकजुट होकर आपके प्रभाव से ही लड़ते रहे—लेकिन कैसे क्षुद्र और बचकाने तरीकों से...अगर मैं आपसे जान बचाकर घर से भाग गया होता तो मुझे सारा परिवार—यहां तक कि मां को भी—छोड़ना पड़ता.... मेरा सारा लेखन सिर्फ और सिर्फ आपको ही लेकर है...'

हां, बाप के अदम्य आत्मविश्वास, भयानक सफल और प्रभावशाली, दबंग-धाकड़ व्यक्तित्व के पिंजरे में चूहों और कैदियों की तरह आतंक में जीते काफ्का का सारा लेखन बाप को लेकर ही है. एक कहानी है 'फैसला'. इस कहानी की स्थिति का जिक्र 'पिता के नाम पत्र' में भी आया है. फैलिस से सगाई कर लेने के बाद वह शादी की आज्ञा लेने आता है. बाप का जवाब है : 'जाओ, जाओ, फौरन करो! अभी और आज ही करो. मैं कुछ भी कहने वाला कौन होता हूं? तुम बड़े हो गये हो, यहीं इसी शहर में पड़े हो और कुछ काम-धाम करने की बात सोचना तो दूर, सीधे जाकर ब्याह रचायेंगे...जो भी कानी-कुबड़ी मिल जाये उसी के गले में वरमाला डालेंगे...करो, करो...और अगर डर लगता हो तो चलो, मैं चलता हूं तुम्हारे साथ...' और ठीक इसी स्थिति में बाप का वाक्य, 'फैसला' कहानी में : 'क्योंकि उस लड़की ने तुम्हारे सामने आकर घाघरा उठा दिया न, देखो-देखो, यों घाघरा उठा दिया, इसलिए अब उससे शादी करेंगे...बेहूदी, बेशर्म, कुतिया...' काफ्का आगे 'पत्र' में लिखता है, 'आपने मुझे शब्दों के जरिए शायद ही कभी इस हद तक जलील और बेइज्जत किया हो...या शायद ही मेरे लिए इतनी नफरत दिखायी हो.'

और 'फैसला' में बाप यह सारी भड़ास निकालकर उत्तेजना और गुस्से में शाप देता है, 'बदमाश, पापी! दूर हो मेरी आंखों के सामने से. . .डूब मर. .मेरा हुक्म है, जा डूब मर. . .' और नायक जार्ज यह सुनते ही दौड़ा हुआ जाता है समुद्र के किनारे, वहां रेलिंग को इस तरह पकड़ लेता है जैसे भूखा रोटी को और फिर नट की तरह कलामुंडी खाता हुआ पानी में जा डूबता है. . .

पुत्र का पानी में डूबना . . .कैसी समानता है नचिकेता की कथा के साथ. बाप, बाजश्रवा शाप देता है: जा मैं तुझे यम को देता हूं. यह सजा थी प्रश्न और शंका करने की, स्वतंत्र ढंग से सोचने की, बाप से अलग मत रखने की. और नचिकेता पानी में डूबकर यम तक पहुंचता है और आत्मा, जीवन इच्छाओं के बारे में प्रश्न करता है. पुराण-कथा में जो कुछ नचिकेता-यम के संवाद के रूप में आया है, ठीक उसी मृत्युबोध से उपजी हैं काफ्का की कहानियों. . .कहानियों की डरावनी दुनिया—अपने को सजा देने की, मारने और मिटा देने की या सबकी निगाहों से भागकर किसी खोह में जा छिपने की मानसिकता. . .

'फैसला' कहानी मुझे इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण लगती है कि जार्ज की यह आत्महत्या, या बाप के द्वारा 'मार' दिये जाने की नियति को स्वीकार कर लेने की संवेदना ही बार-बार उसकी रचनाओं में रूपायित हुई है. बाप के अंधेरे कमरे का वातावरण या दो-एक और बातों को छोड़कर यह काफ्का की उन दो-एक कहानियों में है, जहां सब बाहर और वास्तविक धरातल पर ही घटित होता है. जार्ज की आत्महत्या के बाद तो काफ्का का नायक दुःस्वप्नों और फैंटेसी की दुनिया में चला गया है जहां एक अनुपस्थित शक्ति सारे निर्णय लेती या ले चुकी होती है. नरक की उस दुनिया में इस नायक का उतर जाना ठीक वैसा ही है जैसे नचिकेता. बाप के शाप को ढोता हुआ पानी की गैर-वास्तविक दुनिया में यम की दिशा में उतरता चला गया था. . .प्रश्नों और गहरी बेधक अंतर्दृष्टि से लैस. . .

बाप का सर्वग्रासी अप्रत्यक्ष आतंक, स्वतंत्र-निर्णय की इच्छा रखने वाले व्यक्ति की नियति से खिलवाड़ करने की यह अदृश्य प्रवृत्ति—या और भी आगे जाकर एक सर्वशक्ति संपन्न सत्ता के अचूक—प्रभावी दबाव को महसूस करना, अपनी सांस-सांस में उसे 'देखना' और आर-पार चीर जाने वाली ठंडी निगाहों के नीचे सहज स्वाभाविक न रह पाना, कभी आत्मदया से देखना और कभी उन निगाहों के साथ मिलकर अपने आपको, अपनी हर चेष्टा को, हर हरकत और यहां तक कि खुद अस्तित्व को घृणास्पद, हास्यास्पद और यहां तक कि अपराधी पाना, यह काफ्का का मूल-कथ्य है और उसका सारा साहित्य इसी का विस्तार, बाप, निरंकुश अधिनायक या ऐसी ऑथोरिटी है जो परिवार से उठकर निराकार रूप में राज-सत्ता के रूप में आती है, कानून और व्यवस्था में आती है और फिर अपनी अंतिम स्थिति में ईश्वर के रूप में विद्यमान है जो व्यक्ति को कहीं भी विचार या कार्य की स्वतंत्रता नहीं देती—उसके हर निर्णय और हर सोच को निर्धारित करती है. काफ्का ने इन तीनों को संपूर्ण विस्तार और परिणतियों में अपनी रचनात्मक संवेदना में भोगा और चित्रित किया है.

व्यक्ति की उन्मुक्त स्वतंत्रता का दर्शन, या जिसे हम 'व्यक्तिवाद' कहते हैं, वह अपनी मूल-प्रकृति में अधिनायकवादी व्यवस्था के विरुद्ध व्यक्ति का रूमानी विद्रोह है. इस इकहरी और क्रूर व्यवस्था में जब संवेदनशील व्यक्ति अपने को बाहरी, अजीब और अजनबी, अनसमझा और मिसफिट पाता है, अपने 'विलक्षण' होने की चेतना पर अंकुश, घुटन और दबाव महसूस करता है तो सपनों और कल्पना-चित्रों के माध्यम से अपने को 'मुक्त' कर लेता है. निराकार और अमूर्त जगत में मुक्त महसूस करनेवाला इसका सारा व्यक्तित्व और व्यवहार, सोच और सपने बाकी लोगों से इतने 'दूर और अपरिचित' हो जाते हैं कि वह खुद ही इस स्थिति को अधिक बर्दाश्त नहीं कर पाता और 'कहीं कुछ गलत और पाप है' के अपराध बोझ से मरता जाता है. अंततः विद्रोह की सारी दार्शनिक और सैद्धांतिक या नैतिक शक्ति और जस्टिफिकेशन के बावजूद, व्यवस्था और व्यक्ति की इस लड़ाई में हारता और टूटता व्यक्ति ही है—विद्रोह की मशाल को कुछ और आगे ले जाकर—विद्रोही-वातावरण में अपना हिस्सा जोड़कर. खुद अपना इस तरह 'अलग' और 'असामान्य' होना या होते चले जाना, ऐसा होने या करने का अपराध-बोध आगे जाकर इस अभिशप्त नियति से मुक्ति की आकांक्षा में बदलने लगता है. अवचेतन का यह दबाव व्यक्ति को या तो चेतना की बाहरी सरहदों पर फेंककर 'विक्षिप्त' बना देता है या आत्महत्या के झटके से सबकुछ की समाप्ति पर ले आता है—वह या तो हैमलेट बन जाता है या फिर देवदास. आस्तिक 'आत्महत्या' का उदात्त रूप है मीरा, जो पहले आध्यात्मिक लोक में स्थगित होती है (कामू के शब्दों में मैटाफिजिकल स्यूसाइड करती है) और फिर जहर पी लेती है. कर्म से बचने और अमूर्त जगत में रहने के अभ्यासी इस व्यक्ति की भीतरी चाह अनजाने यह भी होने लगती है कि व्यवस्था ही पहल करके उसे इस अभिशप्त नियति से मुक्ति दिलाये. सामंती व्यवस्था से व्यक्ति के इस विद्रोह और उसकी परिणतियों को लेकर, दर्शन, विचार और कला-जगत में इतना कुछ आया है कि उस सबको दुहराना व्यर्थ है. कहीं उसकी इस

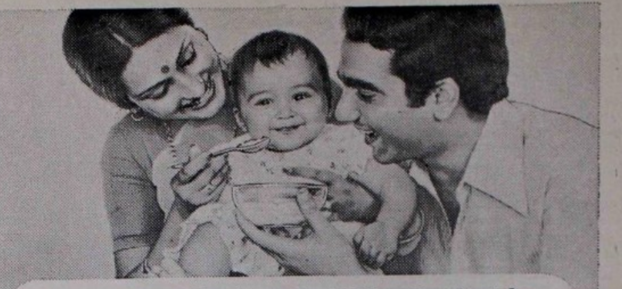

जब मुन्ना ३ महीनेका हो जाए, तो उसे सिर्फ़ दूध ही काफ़ी नहीं है

आपके मुन्ने को चाहिए फ़ैरेक्स

मुन्ने का आदर्श ठोस आहार

३ महीने की उम्र— ठोस आहार का समय

३ महीने का होनेपर, मुन्ने की बढ़ती मॉगों के लिए केवल दूध काफ़ी नहीं है। दिन-ब-दिन बढ़ते उसके शरीर को अब दूध से मिलने वाली कॅलोरीज से कहीं अधिक की जरूरत रहती है। साथ ही अब मुन्ने को ठोस आहार की भी जरूरत है जो उसके तरल आहार की मात्रा कम करके थोड़ेमें उसे अधिक कॅलोरीज दे सके और उसको चबाना सिखा सके।

३ महीने की उम्र— अधिक आयरन की आवश्यकता

"बच्चे को ठोस आहार देना शुरू करने का सबसे अच्छा समय है– जब वह २-४ महीने का हो जाए। हालाँकि दूध एक अच्छा आहार है फिर भी आयरन की कमी के कारण अपने आप में पूर्ण आहार नहीं है। इसीलिये बच्चे को आयरनवाले ठोस आहार की जरूरत होती है।"

—डॉ. सुभाष सी. आर्य : "इन्फैंट एण्ड चाइल्ड केअर फ़ॉर दि इण्डियन मदर"

डॉक्टर फ़ैरेक्स की सिफ़ारिश क्यों करते हैं?

फ़ैरेक्स विशेष रीति से बना सुपाच्य आहार है। इसमें कार्बोहाइड्रेटस, फैटस, कॅल्शियम, फॉस्फ़ोरस और विटामिनस हैं और पर्याप्त मात्रा में आयरन भी है। इस प्रकार मुन्ने के सर्वांगीण विकास के लिये फ़ैरेक्स एक आदर्श ठोस आहार है।

मुफ़्त!

पहले वर्ष मुन्ने की देखभाल संबंधी पुस्तिका मुफ़्त मँगवाइये— यह नयी माताओं के लिये बच्चे की देखभाल संबंधी पुस्तिका है। हमारा पता है:
पो. ऑ. बॉक्स नं. १६११६, (FAR 34 T), बम्बई ४०००२५.

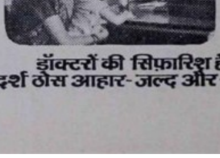

डॉक्टरों की सिफ़ारिश है-फ़ैरेक्स
मुन्ने का आदर्श ठोस आहार- जल्द और सर्वांगीण विकास के लिए

CASGLF-7-203 Hin

'बिलक्षणता' और 'बाकी सबसे अलग' होने की महानता को ही सारी ऊर्जा और शक्ति का स्रोत बताकर उसे जीनियस और हीरो का दार्शनिक आश्वासन दिया गया है तो कहीं आत्महत्या को विद्रोह का चरम रूप या अभिनिवेश (डैथ-विश) को आत्मा की सच्ची पुकार बताया गया है. विचार और कला की उत्कृष्ट-तम कृतियां इसी विद्रोह की पराजय-गरिमा से प्रेरित या उस पर केंद्रित हैं. और इन्हीं में हुए हैं कुछ अद्वितीय कलाकार, दुर्दांत दार्शनिक!

अधिनायकवादी व्यवस्था के खिलाफ व्यक्ति के इस तरह निरंतर, व्यर्थ, निरर्थक, अप्रासंगिक या नगण्य होते जाने की यंत्रणा से मुक्ति (या आत्महत्या) को इन दार्शनिकों ने जिन आधारभूत प्रश्नों और अकाट्य तर्कों से गहराई में जाकर खूबसूरत ढंग से प्रस्तुत किया है या जीवन का चरम लक्ष्य और सारे नैतिक मूल्यों का उज्ज्वलतम स्रोत कहकर गौरवान्वित किया है उसे यदि तत्कालीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो यह समझना बहुत मुश्किल नहीं होगा कि विद्रोही-व्यक्ति को अपनी मुक्ति या मोक्ष क्यों इस 'समाप्ति' में दिखाई देता है? चूंकि विद्रोह का चेतन-अचेतन चुनाव व्यक्ति का अपना है इसलिए इस अभिशप्त नियति से मुक्ति या इस व्यर्थ-अस्तित्व को स्थगित कर लेने का विकल्प या वरण की स्वतंत्रता भी वह अपने ही हाथ में रखना चाहता है. यह सचमुच ही एक हीरो की गौरवपूर्ण जिंदगी है.

और काफ्का का नायक हताशा के इसी अंतिम क्षण या आत्महत्या की इन्हीं सरहदों से वापस लौटता व्यक्ति है. हां, जब वह आत्महत्या या आंतरिक स्थगन के इस निर्णायक बिंदु तक पहुंचता था, तो उसने बाहरी संसार को जोड़नेवाले अपने सारे सेतु जला दिये थे. अब वापसी की इस यात्रा में वह अपने और बाहरी दुनिया के बीच पाता है शून्य, न लांघी जा सकने वाली खाई. इस शून्य को पार करने की कोशिश में वह बाहरी संसार को अपनी सर्जक-कल्पना में पकड़ता है, यानी फैंटेसी और स्वप्न-कथा को जन्म देता है. मुझे काफ्का की कहानियों को फैंटेसी कहने में इसलिए संकोच होता है कि संबंधों और स्थिति-यों को जोड़नेवाली कड़ियां और युक्तियां, लेखक ने इस भौतिक संसार की ही स्वीकार की है.

बीच के संवाद-हीन शून्य के आर-पार बाहर के अरुचिकर, अस्वीकार्य, आतंकप्रद और जिघांसु परिवेश के आक्रमण की चेतना, बाहरी या दूसरों की निगाहों में कुछ न होने का बोध साथ ही अपनी भीतरी संसार की उपस्थिति, उसे स्वीकृति दिलाने का आग्रह (एसर्शन), बाहरी आक्रमण के प्रतिरोध का द्वंद्वात्मक संघर्ष व्यक्तित्व के गठन को विश्रृंखलित और खंडित करने लगता है, वह एकसाथ 'स्व' और 'पर' में बंट जाता है— वह खुद भी होता है और बाहरी भी. इस आंतरिक युद्ध में दोनों एक दूसरे से जानी दुश्मन की तरह व्यवहार करते हैं. इसी दबाव या तनाव में दोस्तोयेव्स्की 'डबल' या 'प्रतिरूप' जैसा उपन्यास लिखता है, और जब जीता हुआ बाहरी व्यक्ति अंदर के इस परास्त, दयनीय व्यक्ति को देखता है तो काफ्का 'कायाकल्प' जैसी कहानी को जन्म देता है. अपने अस्तित्व को किसी कीड़े जैसा अनुपयोगी, निरर्थक, दयनीय और असह्य कचरे के रूप में महसूस करने की तीव्र चेतना ने ही कायाकल्प की परिकल्पना दी है. ठीक इसी स्थिति को वास्तविक बिंबों और संवेदना की गहराईयों तक जाकर पकड़ा है ताल्स्तोय ने—'ईवान इल्यिच की मौत' में. काफ्का नास्तिक है, इसलिए इस व्यर्थताबोध की परिणति साम्सा की मृत्यु द्वारा 'छुटकारा' पाने में होती है, जबकि ईवान इस व्यर्थताबोध के गहरे अहसास में मृत्यु-भय को 'जीतता' है और मोक्ष पाता है.

आस्तिक हो या नास्तिक, नरक दोनों के ही पास है. मैंने बात ही शुरू की थी कि काफ्का के उस 'कुंभीपाक' या यातनागृह से, जहां कर्ता कोई नहीं है, मगर आदमी है कि यंत्रणा और संत्रास भोग रहा है. हिटलर ने जब ऐसे यातनागृह बनाये थे तो उसके सामने एक आदर्श था (दि-साद मजा लेना चाहता था) मानवजाति का शुद्धिकरण. वहां शिकार (या यहूदियों) को तकलीफें और मौत कुछ 'करने' के लिए नहीं, बल्कि जो कुछ वे हैं, उसके लिए दी जाती थीं. यहूदी होना ही उनका अपराध था और स्त्रियों की तरह यहूदियों ने भी इस 'होने' का खमियाजा सदियों भुगता है—जैसे हमारे समाज में अछूत आज भी भुगत रहे हैं. . .इस 'होने' का अपराध अपनी आत्मा में जीना, जिसमें न तो आपका चुनाव है, न विकल्प. . .मगर जिसकी सजा निश्चित है! लगभग इसी मनस्थिति से गुजरे हैं न जाने कितने अजनबी और जन्मजात विद्रोही. . .और काफ्का की सारी रचनाएं इसी अपराध-बोध के नस-तोड़ और दमघोंट तनाव में लिखी गयी हैं. जब वह सीधे-सीधे बाप के आतंक-क्षेत्र में था तो अपने मिसफिट और नगण्य, दयनीय होने के अपराध को जीता था और जब यह आतंक बड़े सत्तास्रोत की तरफ विकसित हुआ तो अपने 'ऐसा होने' का अर्थ भी व्यापकता पाने लगा. मुझे हल्का-सा अहसास यह भी है कि 'होने' में अपनी व्यक्तिगत परिस्थितियों और उनसे बने मनोविज्ञान के साथ साथ यहूदी होने के जातीय संस्कार ने भी योगदान दिया है. काफ्का उन्हीं की भाषा यानी जर्मन को लिख, सोच और जी रहा था जो आगे जाकर उसके अधिकांश परिवार को गैस चैंबर में मार देने वाले थे. हो सकता है इस सबको वह सूंघता रहा हो. बहरहाल, यह मुझे लगता

जरूर है कि इस व्यक्तिगत दुर्भाग्य और दयनीयता की नियति को वृहत्तर परिवेश दे सकने की सामर्थ्य में जातीय-संस्कार ने मदद जरूर की है. तभी तो वह अधिनायकवादी पिता के आतंक को सत्ता मात्र का धरातल दे पाया. या अस्तित्व मात्र को यातना के रूप में भोग सका.

अपराध-बोध और यातना के कथ्य पर काफ्का की एक कहानी है, 'कालापानी' या 'दंडद्वीप'. यहां के कुशल संचालक ने यातना देने की एक से एक नयी मशीनें ईजाद की हैं और वह एक यंत्र विशेष-रूप से प्रेक्षक को दिखाना चाहता है. यह एक मशीनी शिकंजा है, टिखटी के ढंग का. इसमें कैदी को नंगा करके चित, लिटा दिया जाता है और फिर चमड़े के पट्टों से उसे इस तरह कस दिया जाता है कि हिल-डुल न सके. दांतों के बीच भी एक गद्देदार पट्टा कस दिया जाता है और उसे तकलीफ न हो, इसका पूरा खयाल रखा जाता है. अब इसी मशीन का एक हिस्सा, बरमें जैसी एक नुकीली चीज को कैदी की छाती की सतह पर ले आता है. इसमें पानी की नली भी लगी है. मशीन चलते ही यह बरमा आदमी की छाती पर 'उसका अपराध' खोदना शुरू करता है और गहरे धंसता जाता है. नली का पानी खून इत्यादि धोता रहता है ताकि 'अपराध 'साफ पढ़ा जा सके. अंत में बरमा 'अपराध' गोदकर आर-पार निकाल देता है. संचालक का तर्क है कि इससे मरते-मरते आदमी को एहसास रहता है कि वह किस अपराध के लिए मर रहा है! इस कथ्य की ऐसी दिल-दहला देने वाली अविस्मरणीय कहानी मैंने आज तक नहीं पढ़ी! . . .मगर चाहे 'ऊपर' के आदेशों पर ही काम करता हो, कालापानी में संचालक है. उधर कैदी का अपराध भी इतना साफ है कि उसका नाम दिया जा सके. 'होने' की यातना को क्या इतना साफ नाम दिया जा सकता है?

काफ्का की बाकी कहानियों का मुख्य या एकमात्र सरोकार दुहरा है : आदमी जो कुछ है, वह वैसा क्यों है? इस 'होने' के अपराध से मुक्ति कहां है? इस विधान या व्यवस्था का वास्तविक स्वरूप क्या है और यह अपराध-चेतना पैदा करने से लेकर प्रभावी ढंग से उसे कार्यान्वित करने और सक्रिय बने रहने के उसके तरीके क्या हैं? जिस सर्वोच्च सत्ता का नाम लेकर नियम-कानून व्यक्ति पर लादे जाते हैं और व्यवस्था को सक्रिय रखा जाता है, उसका स्रोत या आकार कैसा है?

अपने 'होने' की अभिशप्त नियति की स्तर-स्तर गहरी पड़ताल में उसने 'एक कुत्ते की तफ्तीश' जैसी कहानी लिखी है जहां 'कुत्ता होने की अभिशप्त नियति को फलांगकर बाहर आ जाना, कुत्ता न रहना है.' जैसा बोध है. इसी बोध को गालिब ने अपने शब्दों में कहा है : 'कैदे हयात, बंदो, गम, अस्ल में दोनों एक है. मौत से पहले आदमी, इनसे नियाज पाये क्यों.'

▣

वस्तुत: 'चीन की दीवार' कहानी 'दुर्ग' और 'मुकद्दमा' उपन्यासों की परंपरा में लिखी गयी है. अपनी नियति के साक्षात्कार के अंतिम बिंदु पर पहुंचकर आदमी इस व्यवस्था और विधान के स्वरूप और स्रोत को समझना चाहता है. यहां काफ्का अपनी उसी पैनी दृष्टि से सत्ता और व्यवस्था की बनावट, उसकी विसंगतियों-अंतर्विरोधों का, उनके आतंक और यातना देने वाले अचूक विधानों का और इस सारे बोझ के नीचे, बिल्ली द्वारा कोने में घेर लिये गये चूहे के शारीरिक, मनोविज्ञानिक और आध्यात्मिक व्यवहारों का अध्ययन करता है. ईश्वरहीन संसार में इस क्रूर चक्र को बेहद कुशलता से चलाये रखने वाले निराकार संचालक की खोज ले कहीं नहीं जाती, एक गहरी असहायता और संत्रास की ही सृष्टि करती है. इस स्वचालित कोल्हू के स्रोत और उसमें कुचले जाने वाले गन्ने दोनों को समझने के प्रायास में ही काफ्का ने अपना साहित्य लिखा है. निश्चित रूप से वह ऐसा गन्ना है, जो अंतिम-सांस तक आंखें खोले कोल्हू की सारी कार्य-प्रणाली भी देखना-समझना चाहता है, मगर साथ ही छाती पर इस 'गन्ना' होने के अपराध को खोदते हुए बरमे के नीचे तकलीफ, कराह और छटपटाहट भी महसूस कर रहा है. . .या हर क्षण अपनी आत्मा में उसे नुकीले लोहे को उतरते 'देखता' है.

यातना और सिर्फ यातना, एक बेहद वेधक प्रतिभा और अत्याधिक संवेदनशील व्यक्ति के नरक की यंत्रणा अगर कोई दृष्टि देती हो तो काफ्का की कहानियां इन्हीं अंधेरों और कालेपानी के निर्वासनों की अद्वितीय कहानियां हैं. . .मगर वे तो सिर्फ 'मांद' से 'दुर्ग' तक ले जाती हैं—यानी मिट्टी-झाड़ी की छोटी-सी खोह नहीं, 'चीन की दीवार' से बनी, बहुत मजबूत कुशल स्थापत्य से तैयार बिराट गढ़ी! इसमें कैद होने का 'फैसला' तो पहले ही लिया जा चुका है, 'मुकद्दमा' तो सिर्फ एक भूल-भुलैया है. . .और इस सब चक्रव्यूह से भागने के व्यर्थ-निरर्थक परिश्रम की कमर-तोड़ बेगारी ढोने वाली सिसिफस की कामू-कथा इसी बिंदु से शुरू होती है. . .यानी भारतीय संतों की भाषा में तोता, स्वाद और भूख की स्वाभाविक प्रेरणा से सेमल में चोंच मारता है और उसके मुंह और वातावरण में सेमल की रुई ही रुई फैल जाती है.

यहां से दार्शनिकों की दुनिया शुरू होती है. . .यानी नचिकेता के प्रश्न. . . □

चीन की दीवार

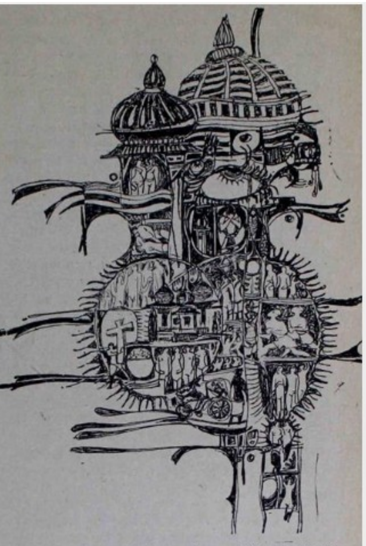

चीन की दीवार का बनना आखिर सुदूर उत्तरी सीमा पर जाकर पूरा हुआ. दक्षिणपूर्व और दक्षिण-पश्चिम से दो अलग-अलग हिस्सों में दीवार उठी और इस जगह आकर यह दोनों हिस्से आपस में मिल गये. हिस्सों में बंटकर निर्माणकार्य चलाने का सिद्धांत, पूर्वी और पश्चिमी मजदूरों के बड़े-बड़े दस्तों ने छोटे-छोटे रूपों में ही लागू किया —अर्थात लगभग बीस-बीस मजदूरों की टुकड़ियां बना ली गयीं और इन्हें एक निश्चित लंबाई की चिनाई पूरा करने का काम दे दिया गया. मान लीजिए, एक टुकड़ी पांच-सौ गज की दीवार चिनेगी तो उससे आगे जोड़ मिलाने के लिए दूसरी टुकड़ी को भी पांच सौ गज की दीवार उठानी होगी. मगर दीवार के ये दोनों हिस्से जिस जगह आकर मिलते थे तो यह नहीं था कि इस हजार गज लंबी दीवार के बाद ही चिनाई का काम शुरू हो जाये— बल्कि होता यह था कि मजदूरों के ये दोनों दल चिनाई शुरू करने के लिए आस-पास ही, किसी और जगह पर भेज दिये जाते थे. जाहिर था कि इस तरीके से बीच-बीच में बड़ी-बड़ी दरारें छूट जातीं. ये बाद में धीरे-धीरे भरती रहती थीं. इनमें कुछ दरारें तो, दीवार पूरी हो जाने का सरकारी ऐलान हो जाने के बाद तक भी ज्यों की त्यों बनी रहीं. लोगों का तो खयाल यह भी है कि कुछ दरारें कभी भरी ही नहीं गयीं. खैर,ऐसी बातों को अफवाहों में शुमार किया जा सकता है, और इस दीवार के निर्माण को लेकर क्या कुछ कम अफवाहें उस समय फैली थीं! दीवार का आकार-प्रकार ही ऐसा और इतना लंबा-चौड़ा था कि खुद अपनी आंखों देखकर इन अफवाहों की सचाई जांच सकना आदमी के लिए असंभव था.

सुनते ही एक बात मन में उठती है कि अगर दीवार को लगातार एक ही साथ बना दिया जाता तो क्या अधिक अच्छा नहीं रहता? यह भी न सही तो कम से कम दोनों प्रमुख हिस्सों को ही पूरी-पूरी लंबाई में बना दिया जाता. दुनिया भर में ऐलान था और सभी बताते थे कि दीवार का उद्देश्य उत्तरी लोगों से देश की रक्षा करना है, मगर जब दीवार में ही दरारें छूट गयी हों तो वह रक्षा क्या खाक करेगी! रक्षा-वक्षा इससे क्या होगी, खुद दीवार के लिए हमेशा एक खतरा बना रहेगा. वीरान इलाकों में खड़े हुए दीवार के इन हिस्सों को कबायली लोग हर बार आकर तहस-नहस कर डालेंगे. इस निर्माण-अभियान से वे वैसे ही चौकन्ने हो गये थे और टिड्डियों के दल की तरह झपाटे के साथ यहां से वहां अपने अड्डे बदलते रहते थे. इसलिए शायद हम बनाने वालों के मुकाबले उन्हें दीवार की प्रगति का ज्यादा अच्छा और पूरा-पूरा ज्ञान था. बहरहाल, निर्माण का इतना भारी कार्य किसी और दूसरे तरीके से हो भी नहीं सकता था. बात को समझने के लिए स्थिति को दूसरे पहलू से देखना होगा. दीवार का उद्देश्य तो सदियों तक सुरक्षा करना था और इस प्रकार के कार्य में कुछ बातों की आधारभूत रूप से आवश्यकता थी, जैसे बनावट के मामले में अचूक सावधानी, सभी युगों और देशों का स्थापत्य विषयक ज्ञान और कौशल तथा व्यक्तिगत रूप से बनाने वालों में भरपूर जिम्मेदारी का अटूट विश्वास. यह सही है कि जहां-जहां सिर्फ परिश्रम का काम था, वहां पास-पड़ोस की बस्तियों से स्त्री-पुरुष-बच्चे— सभी तरह के मजदूरों को अच्छी दिहाड़ी पर लगाया जा सकता था, लेकिन रोजनदारी पर काम करने वाले मजदूरों के ऊपर देख-रेख के लिए ऐसे आदमी की सख्त जरूरत थी जो चिनाई की कला में माहिर हो, साथ ही इस कार्य की महानता और महत्व को खुद भीतर वह महसूस कर सकता हो. जितना भारी यह काम था उतनी ही ज्यादा थी—जिम्मेदारी. सारे निर्माण-कार्य में जितने लोग खप सकते थे, उतने तो नहीं, मगर ऐसे जिम्मेदार आदमियों की सचमुच काफी संख्या में आवश्यकता थी.

आखिर इतना बड़ा काम बिना सोचे-समझे तो उठाया नहीं गया था. नींव का पहला पत्थर रखने के पचास साल पहले ही सारे चीन में स्थापत्य कला को, खासतौर से राजगीरी को ही ज्ञान की सबसे महत्वपूर्ण शाखा घोषित कर दिया गया था. शेष कलाओं को सिर्फ वहीं तक मान्यता प्राप्त थी, जहां तक स्थापत्य कला में उनकी जरूरत थी. मुझे अभी भी अच्छी तरह याद है—हम लोग बहुत छोटे थे और मुश्किल से खड़े हो पाते थे. उन दिनों भी गुरुजी के बगीचे में हमें खड़ा कर दिया जाता था और पत्थरों के टुकड़ों और मिट्टी से दीवार बनाने की आज्ञा होती, तभी अपना लबादा लपेटते गुरुजी आते और ऐसी ठोकर मारते कि दीवार गिर जाती. फिर तो हमारी बनायी दीवार के इस कच्चेपन पर ऐसी बुरी लताड़ पड़ती कि हम सब रोते-पीटते अपने मां-बापों के पास भाग जाते. बात जरा-सी है, लेकिन समय की नब्ज पहचानने के लिए महत्वपूर्ण है.

▣

तीस वर्ष की उम्र में जैसे ही मैंने प्रारंभिक स्कूल का आखिरी इम्तिहान पास किया, सौभाग्य से दीवार का बनना शुरू हो गया. सौभाग्य इसलिए कि मुझसे पहले जाने कितनों ने ऊंची-ऊंची डिग्रियां इकट्ठी की थीं और दिमाग में स्थापत्य की एक से एक शानदार योजनाएं लिये दर-दर की ठोकरें खाते मारे-मारे फिरते थे. आखिर में उनकी हिम्मत जवाब दे जाती थी. लेकिन उन्हें अंतिम रूप से सबसे निचले पद वाले निरीक्षकों के रूप में चुना गया, वे लोग सचमुच इस महान कार्य के ही लायक थे. अक्सर इन लोगों में वे राज-मजदूर थे, जिन्होंने दीवार की नींव के पहले पत्थर के वक्त से ही अपने-आप को उसका एक अंग समझना शुरू कर दिया था. उन्होंने दीवार को लेकर न जाने कितना कुछ सोचा-विचारा था और अभी भी सोचते-विचारते थे. इन राज लोगों की कामना सिर्फ इतनी ही नहीं थी कि वह अपने काम को निहायत कौशल और कलात्मकता के साथ पूरा कर लें, बल्कि वे लोग तो उतावले थे कि कौन-सा दिन हो कि दीवार पूरी की पूरी बनकर तैयार सामने खड़ी हो. रोजाना के मजदूरों को ऐसी कोई उतावली नहीं थी, उन्हें तो अपनी मजदूरी से ही मतलब था. उधर लोगों के मन में साहस, आस्था और उत्साह भरने के लिए, सबसे ऊंचे या बीच के ओहदे वाले निरीक्षक इस चौमुखे निर्माण की देख-रेख के काम में ही उलझे रहते थे. लेकिन सबसे निचले निरीक्षकों का उत्साह बनाये रखने के लिए दूसरे और तरीकों की जरूरत थी. देखने में भले ही उनका काम निहायत मामूली लगे, वास्तव में बौद्धिक रूप से यह बहुत ही बड़ा था. सिर्फ यही तो उनका काम नहीं था कि घर-बार से सैकड़ों मील दूर बियाबान पहाड़ी इलाकों में पड़े वे महीनों, कभी-कभी तो वर्षों, एक के ऊपर दूसरा पत्थर चिनते रहे. एक तो काम ही ऐसा कि आदमी की लंबी से लंबी जिंदगी में पूरा न हो, फिर हाड़-तोड़ मेहनत, जिसका कोई नतीजा अपने सामने आने वाला न हो. स्वभावतः ही उनकी हिम्मत टूट जाने का डर था. और सबसे बड़ा डर यही कि जहां मजदूर की हिम्मत टूटी, वह काम की दृष्टि से बेकार हुआ. इसलिए यह तय हुआ कि निर्माण-कार्य हिस्सों में बांटकर ही किया जाये. पांच सौ गज लंबी दीवार पांचेक वर्षों में पूरी हो जाती और तब तक निरीक्षक अनिवार्यतः थककर चूर-चूर हो चुकते. न तो अपने-आप में विश्वास रह जाता, न दीवार में, न दुनिया में. इसलिए जब हजार गज लंबी दीवार पूरी होने की खुशियों और नाच-गाने-भरे जश्नों में ये लोग होश-हवास भूले रहते, तभी इन्हें बाकायदा किसी बहुत दूर के इलाके में भेज दिया जाता. रास्ते में इन्हें जहां-तहां खड़े, दीवार के पूरे किये हुए टुकड़े मिलते, सबसे ऊंचे अधिकारियों के निवास स्थान मिलते और यहां इन्हें पुरस्कार पदक दिये जाते. देश के जाने किन-किन हिस्सों से आती मजदूरों की नयी-नयी टोलियां आनंद भरी चहल-पहल के साथ गुजरती दिखाई देतीं. दीवार की टेक तथा मचानों के लिए जंगल के जंगल कटते दीखते. बड़े-बड़े पहाड़ काटकर दीवार के लिए चौकोर पत्थर कटता हुआ दिखाई पड़ता और दीवार पूरी होने के लिए प्रार्थना करते संत-महंतों के मंत्रोच्चार रास्तों के मंदिरों से आ-आकर इनके कानों में पड़ते. और यह दिन उनके मन की उद्विग्नता और थकान पर शीतलता का लेप कर जाता. थोड़े दिन घर जाकर ये लोग आराम करते, तो वहां का शांत जीवन मन में नयी शक्ति भर देता. जिस सरल, श्रद्धा-भाव से इनके बयान सुने जाते और जिस निष्ठा से गांव का सीधा-सादा किसान एक दिन दीवार पूरी हो जाने की बात को गले उतार देता, उस सबसे उनकी आत्मा की ढीली डोरियां कस उठतीं. इनके मन में इस राष्ट्रीय दीवार पर फिर से जी-जान से जुट जाने की इच्छा इस अदम्य भाव से उठती कि अनंत-अटूट आशावान बच्चों की तरह ये घर से दुबारा विदा ले लेते. लौटने के समय से पहले ही वे निकल पड़ते, आधा गांव उन्हें दूर तक छोड़ने साथ आता. झंडे और दुपट्टे फहराते. दल के दल सड़कों पर चलते दिखाई देते. कितना महान, सुंदर, संपन्न और प्यारा है उनका देश— इस बात को मानो वे पहली बार अनुभव करते. देश का हर व्यक्ति भाई था और उसकी सुरक्षा के लिए दूसरा भी दीवार बना रहा था. इसके लिए वह मन-वचन-कर्म से आजीवन उसका आभार मानेगा. एक! एका! कंधे से कंधा मिलाये भाइयों के जत्थे. खून का एक प्रवाह था जो शरीर की संकीर्ण सीमाओं में ही नहीं बंधा था, वरन चीन के अंतहीन योजनों में, यहां से वहां तक किलकारियां मारता हुआ चक्कर काट रहा था.

इस प्रकार यह बात अच्छी तरह समझ में आ जाती है कि क्यों काम को हिस्सों में बांटकर किया जा रहा था. मगर साथ-साथ कुछ और भी कारण थे. पहली बार देखने में भले ही समस्या ऐसी न लगे, लेकिन सारी दीवार के निर्माण में इसका बड़ा महत्व है. इसलिए इस सवाल पर इतनी देर अटकने में ताज्जुब नहीं होना चाहिए. अगर मुझे तत्कालीन भावनाओं और विचारों को सरलतम रूप से प्रस्तुत करना हो तो, इस सवाल में गहरे उतरने के सिवाय मेरे सामने कोई रास्ता नहीं है. सबसे पहली बात तो यह है कि उन दिनों बैबेल की मीनार (वह मीनार जिसमें एक-एक खंड पर सब देशों के भाषा-भाषी इसलिए रखे गये थे कि मानवीय सहयोग का एक नया अध्याय बनेगा, पर वे अलग-अलग राष्ट्रीयता के लोग आपस में सहयोग के स्थान पर लड़ मरे थे—अनु.) से छोटी चीज बना डालने की बात किसी के दिमाग में नहीं आती थी. हालांकि लोगों का यह भी पक्का विश्वास था कि बैबेल की मीनार को वैसा कोई दैवी आशीर्वाद प्राप्त नहीं था, जैसा उनकी दीवार को. मेरी बात का एक ठोस आधार है—जिन दिनों निर्माण कार्य शुरू ही हुआ था, तभी किसी विद्वान ने एक पुस्तक लिखी थी और उसमें बैबेल की मीनार और उस दीवार की विस्तार से तुलना की थी. उसने यह सिद्ध करके दिखा दिया था कि वे कारण क्या थे कि बैबेल की मीनार अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पायी. असफलता के कारण वे नहीं हैं जो सारी दुनिया को बताये जाते हैं. वहां तो असली महत्वपूर्ण कारण ही गायब हैं. उस विद्वान ने अपने प्रमाण सिर्फ लिखे-लिखाए कागजों और दस्तावेजों से ही इकट्ठे नहीं कर लिये थे, बल्कि दावा किया था कि खुद मौके पर जाकर उसने जांच की है और पाया है कि मीनार की असफलता का एक मात्र कारण, अनिवार्य कारण, नींव का मजबूत न होना था, उस लिहाज से हमारा युग उस प्राचीन युग से मीलों आगे था. हमारे युग का प्रायः हर शिक्षित आदमी पेशे से राज था और नींव रखने के मामले में तो उससे कभी किसी तरह की चूक होने का सवाल ही नहीं उठ सकता था. बहरहाल, उक्त विद्वान को यह सब सिद्ध करने की उतनी चिंता थी भी नहीं, उसकी मूल स्थापना तो यह थी कि मानव जाति के इतिहास में पहली बार यह विराट दीवार ही बैबेल की मीनार के लिए स्थायी नींव का सूत्रपात कर रही है. पहले दीवार होगी, तभी तो बाद में मीनार बन सकेगी. उस जमाने में तो जिसे देखो यही किताब लिये घूमता था, लेकिन सच पूछो तो आज तक मेरी समझ में नहीं आया कि आखिर उसके मन में कैसी मीनार की कल्पना थी. जिस तरह की यह दीवार थी, उससे तो पूरा एक घेरा भी नहीं बनता था. यह तो आधे या चौथाई घेरे में ही समाप्त होने को थी. तो फिर उसने कैसे इसे मीनार का आधार मान लिया? जाहिर है, यह बात किसी आध्यात्मिक आशय से ही कही गयी होगी. मगर जब बात इतनी ही थी तो सचमुच की ठोस दीवार बनाने की क्या जरूरत थी—ऐसी दीवार जिसका एक बाकायदा जीता-जागता आकार था और जो हजारों लोगों की जिंदगी भर की मेहनत का फल थी? या उस पुस्तक में मीनार के नक्शे और उस विराट कार्य के लिए लोगों की शक्तियों को सामूहिक रूप से एक एक-गुट करने के सुझाव किस मतलब से दिये गये थे? बेशक, यह साफ था कि मीनार की यह बात किसी हद तक हवाई और निराधार है.

उस विद्वान की इस पुस्तक का जिक्र तो सिर्फ एक उदाहरण है, वरना क्या-क्या खुराफातें उस जमाने में लोगों के दिमागों में नहीं आती थीं? कारण शायद यही रहा होगा कि जाने कितने लोग थे जो इस परम उद्देश्य की सिद्धि में भरसक अपना-अपना योगदान देना चाहते थे. मनुष्य का स्वभाव ही परिवर्तनशील और धूल की तरह चंचल है, वह कोई बंधन, कोई अंकुश नहीं मानता. अगर कहीं कोई बंधा भी तो देखते-देखते उन्मत्त की तरह हर रस्से को काट फेंकता है. दीवार या कोई और बंधन उसे रोक नहीं पाते. यहां तक कि वह खुद अपने-आपको तोड़-फोड़कर तहस-नहस करने पर उतारू हो जाता है.

जिस समय काम को टुकड़ों में बांट-बांटकर करने का निर्णय किया गया, हो सकता है तब इस बात को भी नजरअंदाज न किया गया हो, क्योंकि मनुष्य स्वभाव की यह चंचलता तो मूलतः किसी भी प्रकार की दीवार बनाने के खिलाफ पड़ती है. हमें खुद (और यहां मैं अपने जैसे बहुत से लोगों की बात कहता हूं) ये सब बातें कहां पता थीं? वह तो, जैसे-तैसे इस सर्वोच्च सत्ता के आदेशों का अत्यंत बारीकी से अध्ययन करते गये, यह बात हमारे भेजे में उतरती गयी. तभी यह ज्ञान हुआ इस विराट और संपूर्ण कार्य में हमने जो अपना विनम्र-श्रम अर्पित किया है, इसके मूल में भी यही सर्वोच्च सत्ता है, वरना किताबी ज्ञान और मनुष्य की सीमित समझ से क्या हाथ लगता था. निश्चय ही इस सर्वोच्च सत्ता के कार्यालय में सारे मानवीय विचार, सारे मानवीय स्वप्न निरंतर चक्कर काटते रहते होंगे और उनके उत्तर के लिए वहां सारे मानवीय लक्ष्य और उपलब्धियां पहले से ही प्रस्तुत होंगी. जिससे भी मैंने पूछा, किसी को भी मालूम नहीं था न आज तक है, कि इस सर्वोच्च सत्ता का कार्यालय है कहां, और वहां कौन बैठता है. हां, जो नेता लोग बैठे-बैठे अपने नक्शे-योजनाएं बनाया करते थे, उन्हीं के हाथों पर जरूर स्वर्गिक स्वप्न-संसार भरे उस कार्यालय की खिड़की से दिव्य प्रकाशबिंब उतर आते होंगे.

▣

इस सबको देखते हुए निश्चयी और ईमानदार प्रेक्षक को एक बात माननी पड़ती है: सर्वोच्च सत्ता ने अगर सचमुच ही इस कार्य को गंभीरतापूर्वक उठाया, तो दीवार के काम में आड़े आने वाली सारी संभावित कठिनाइयों को पहले ही हल भी कर लिया था. अब तो यह मान लेने के सिवा कोई चारा ही नहीं है कि सर्वोच्च सत्ता ने हिस्सों में चिनाई का यह तरीका खूब सोच-समझकर ही चुना था—मगर यह तरीका था तो मूलतः काम चलाऊ ही. परिस्थिति के हिसाब से बहुत सही भी नहीं था. यानी सर्वोच्च सत्ता की मूल इच्छा वस्तुतः स्थायी और सबसे सही तरीके काम में लाने की ही रही होगी.

अजीब नतीजा है न! मगर एक तरह से देखें तो इस पर भी काफी कुछ कहा जा सकता है. शायद यहां आकर इस प्रश्न पर कुछ जमकर बातचीत भी जा सकती है. उन दिनों न जाने कितने लोगों में—और इनमें अच्छे से अच्छे लोग शामिल थे—यह गूढ़ सूक्ति बेहद प्रचलित हो गयी थी कि 'जितना जिससे बने, सर्वोच्च सत्ता के आदेशों को हृदयंगम करने की कोशिश करो, लेकिन एक सीमा तक ही, इसके आगे चिंतन-मनन से बचो' बड़ी विद्वतापूर्ण सूक्ति थी, इसे और आगे बढ़ाकर एक दृष्टांत के रूप में फैला दिया गया था, और अक्सर बाद में सुनाया जाता था. चिंतन-मनन से इसलिए मत बचो कि इससे कोई नुकसान हो सकता है, बल्कि नुकसान ही हो, इसका भी क्या ठीक! क्या नुकसान-देह है, क्या नहीं है यह प्रश्न ही व्यर्थ है. उद्गम निर्झर को लो, काफी शक्ति संचय करने तक यह झरना निरंतर बढ़ता रहता है और जब शक्तिशाली हो जाता है, तो अपने दोनों ओर विस्तार से फैली तटवर्ती धरती को जी खोलकर सींचता, समृद्ध करता चलता है, मगर क्या बिना भटके-बहके समुद्र में जा मिलने का रास्ता छोड़ देता है? ऐसे शक्तिशाली प्रवाह को पाकर सागर भी धन्य हो उठता है, क्योंकि इस संगम का अब कुछ मतलब और फायदा भी है. इस रास्ते पर तो सर्वोच्च सत्ता के आदेशों पर चिंतन की रासें ढीली छोड़ दो. मगर इसके आगे नहीं. किनारे तोड़कर नदी जब बाहर फैलने लगती है, तब न उसकी कोई रूपरेखा रह जाती है और शक्ल-सूरत. प्रवाह की गति अवरुद्ध पड़ जाती है और नदी अपने परम लक्ष्य की ओर आंखें मूंद लेती है. धरती पर ही छोटे-छोटे सागर बनने लगते हैं. खेत-खलिहानों का नुकसान होता है. और मजे की बात यह है कि अपने इस लंबे-चौड़े विस्तार को कायम रख पाना खुद नदी के काबू में नहीं रह जाता. मजबूर होकर उसे फिर उन्हीं दोनों पाटों के बीच लौट आना पड़ता है. इतना ही क्यों, शीघ्र ही आने वाली गर्मी में सूखकर बेचारी बेहाल हो जाती है. सर्वोच्च सत्ता के आदेशों पर इस हद तक जाकर दिमाग खपाने की जरूरत आपको नहीं है.

जिन दिनों दीवार बन रही थी, उन दिनों हो सकता है इस दृष्टांत-कथा को असाधरण अर्थपूर्ण और शक्तिशाली माना जाता रहा हो, लेकिन मेरी प्रस्तुत रचना में तो यह बहुत ही सीमांत संदर्भ में आयी है. मेरी जिज्ञासा वस्तुतः शुद्ध ऐतिहासिक है. इसलिए मैं हिस्सों में होने वाले काम के पीछे के कारण खोजने में इतना पसीना बहा रहा हूं. वजह केवल इतनी ही नहीं हो सकती जितनी लोगों के संतोष के लिए काफी मानी जाती रही थी. मानता हूं कि विचार-सामर्थ्य की मेरी सीमाएं बहुत ही संकरी हैं, लेकिन इस सिलसिले में जिस क्षेत्र और प्रांत का जायजा मुझे लेना है, आखिर इस दीवार के जरिये किससे बचाव करना था? उत्तर के लोगों से? मैं दक्षिण-पूर्वी चीन का रहने वाला हूं. कोई उत्तरी आदमी हमारा बाल बांका नहीं कर सकता. हां, पुरखों की किताबों में हमने उनके बारे में जरूर पढ़ा है. अपने सहज स्वभाव के अनुरूप जो-जो निर्दय अत्याचार ये उत्तरी लोग करते हैं, उन्हें सुनकर ही हम, अपने पेड़ों की शीतल-शांत छाया में भी गहरी-गहरी सांसें लेने लगते हैं. सच्चाई को हूबहू आंखों के सामने खड़ाकर देने वाले कलाकार की कूची ही हमें बताती है कि देखने में ये बिल्कुल राक्षसों जैसे हैं. भयानक जबड़ों से फाड़ खाने के लिए शिकार की खोज में बेचैन उनकी आंखें कैसे आधी-आधी मुंदी रहती हैं. जब हमारे बच्चे बहुत शैतानी करते हैं, तो हम उन्हें ये तस्वीरें दिखाते हैं. देखते ही वे रोते-सिसकते दौड़कर हमारी छाती से

काफ्का की लघुकथाएं

पेड़

हम बर्फ में लगे पेड़ के तनों की भांति हैं, जो दिखने में बड़े सलीके-से पेड़ लगते हैं, और लगता है कि एक हल्का-सा झटका उन्हें लुढ़काने के लिए काफी होगा. मगर नहीं, ऐसा नहीं किया जा सकता, क्योंकि जमीन में उनकी नींव काफी मजबूत होती है. मगर देखिए, यह भी मात्र भ्रम ही है! □

अकस्मात सैर

जब कभी ऐसा लगे कि आपने शाम को घर में ही ठहरने का फैसला कर लिया है, कि जब आप घरेलू कपड़ों में रात के खाने के बाद मेज पर रोशनी जलाकर किसी काम अथवा खेल में जुट गये हों, जैसा कि आप अक्सर सोने से पहले करते हैं, कि जब बाहर मौसम इतना खराब हो कि आपका घर में ठहरना स्वाभाविक लगता हो, और जब आप मेज के सामने पहले से ही इतनी देर से चुपचाप बैठे हुए हों कि सहसा अपके विदा होने से दूसरों को जरूर हैरानी हो जाये, कि जब सीढ़ियां अंधेरे में हों और आगे वाले दरवाजे पर ताला लगा हुआ हो, तब भी आपने अकस्मात बेचैनी में बिलबिलाते हुए चलने की तैयारी करते हुए कपड़े बदलकर जल्दी-जल्दी बाहर जाने वाले कपड़े पहन लिये हों तो स्पष्ट हो जाता है कि आपको बाहर जाना ही है.

औपचारिकतावश कहे गये कुछ शब्दों के साथ बाहर निकलते हुए हड़बड़ी में थपाक से दरवाजा बंद करके आप अपने विचार में कमोबेश अपनी नाराजगी का इजहार कर देते हैं. गली में अपने अंगों को लापरवाही से झटकते हुए आप जैसे महसूस करते हैं कि आपने इनसे मुक्ति पा ली है और इस फैसलाकुन कारंवाई से आपने फैसलाकुन कारंवाई की क्षमता को अपने भीतर समेट लिया। है और तेज से तेज बदलाव का मुकाबला करने के लिए आपकी ताकत बिना किसी कोशिश के आपका साथ दे रही. जब इस मनःस्थिति में आप लंबी-लंबी गलियों में बड़े-बड़े डग भरते हुए जाते हैं—तो अपने परिवार से आप उस शाम पूरी तरह से दूर निकल आते हैं, जिसे आप धीरे-धीरे भूल जाते हैं, जबकि अपने पुट्ठों को थपथपाते हुए आप एक मजबूत और निडर काला साया बने अपनी असली हैसियत के अनुरूप ऊपर उठ जाते हैं.

शाम को देर गये ऐसी घड़ी में यदि आप अपने किसी मित्र को मिलने चले जायें कि उसका क्या हाल है, तो आप और भी बुलंद हो जाते हैं! □

(अनुवाद : सत्येंद्र शर्मा)

चिपक जाते हैं. बस, इससे आगे इन उत्तरी लोगों के बारे में हम कुछ भी नहीं जानते. इन्हें हमने खुद कभी नहीं देखा. अगर हम अपने गांव में ही बने रहें, तो शायद कभी देख भी नहीं पायेंगे. दुर्दांत घोड़ों पर सवार अगर ये सीधे हमारी दिशा में अंधाधुंध दौड़ना शुरू कर दें, तब भी हमें कभी इनके दर्शन नहीं हो पायेंगे. हमारा ये देश भी तो ऐसा लंबा-चौड़ा है कि उन्हें हम तक पहुंचने ही नहीं देगा. उनकी दौड़ बीच हवा में ही कहीं खत्म हो जायेगी.

यहां एक सवाल उठता है—अगर यह बात सच है तो क्यों आखिर हम लोगों ने इस दूर-दराज शहर में आकर काम सीखने के लिए अपना घर-बार छोड़ा, क्यों पुलों वाली नदी छोड़ी, क्यों मां-बाप, रोती बिलखती पत्नियां और बच्चे छोड़े? उन्हें इन दिनों हमारी देखभाल की जरूरत थी. हमने ऐसा क्यों किया! जहां तक हमारे खयालों में बैठे डरों का सवाल है, वे तो दीवार के पार कहीं सुदूर उत्तर में ही चक्कर मारते रहते थे. तब हम वहां क्यों नहीं गये? सवाल का जवाब सर्वोच्च सत्ता को देना है.

हमें अपने नेताओं पर भरोसा है. वे सब कुछ जानते-समझते हैं. अपनी भारी-भारी चिंताओं फिक्रों-जिक्रों में डूबे हुए हमारे ये नेता हमारे बारे में पूरी खोज-खबर रखते हैं. हमारे छोटे से छोटे व्यापार और व्यवसायों को जानते हैं. हमें टूटी-फूटी झोपड़ियों में इकट्ठे बैठे हुए देखते हैं, परिवार के बीच बैठकर घर के बड़े-बूढ़ों को सांध्य-प्रार्थना करते हुए देखकर ये लोग खुश और नाखुश होते हैं. वे सर्वज्ञ हैं. साथ ही आता है, खुद सर्वोच्च सत्ता का सवाल. सो अगर उसके बारे में विचार प्रकट करने की इजाजत हो, तो मैं कहूंगा कि यह सर्वोच्च सत्ता जाने किस जमाने से रहती चली आयी है. इसका संघटन इस तरह नहीं हुआ, जैसे कुछ सरपंच आकर एक जगह जुट गये हों. सरपंचों की इस तरह की मंडली का कोई ठिकाना है? कहीं किसी के दिमाग में फितूर आया और अफरा-तफरी में पंचों की बैठक बुला ली गयी. जो भी हुआ शाम को उसकी मुनादी करवाने का निर्णय लेकर सभा विसर्जित हो गयी. निर्णय में कुछ और न किया, तो पिछली रात इन पंच लोगों पर सपने में जिस देवता ने कृपा की थी उसी के स्वागत में रोशनी करा दी. फिर भले ही रोशनी बुझते न बुझते इन पंच लोगों को ठोंक-पीटकर किसी अंधेरे कोने में बिठाया जाये. . .नहीं, सर्वोच्च सत्ता का संघटन ऐसा नहीं हो सकता. मेरा तो दावा यहां तक है कि यह सर्वोच्च सत्ता अनादिकाल से रही है और अनादिकाल से ही रहा है, दीवार खड़ी करने का फैसला. कैसे भोले हैं उत्तर के ये लोग, जो समझते हैं कि दीवार उन्हीं से बचाव के लिए बनी है, और कैसे भोले निश्छल हृदय हैं हमारे सम्राट, जिन्हें मुगालता है कि दीवार के बनाये जाने के पीछे उनका आदेश था. दीवार. बनाने वाले तो हम लोग हैं. हमें पता है कि असलियत क्या है? इसीलिए जबान सिये बैठे हैं.

▣

जिन दिनों दीवार खड़ी हो रही थी, तबसे लेकर आज तक मैं एकाग्र भाव से विभिन्न जातियों की आपस में तुलना और उनके इतिहास का गहरा अध्ययन करने में लगा रहा हूं. कुछ सवाल ऐसे हैं, जिनकी जड़ तक पहुंचने का यही एकमात्र तरीका है. इसमें मैंने पाया है कि हम चीनियों में कुछ व्यक्ति और संघ तो ऐसे शीशे की तरह साफ और पारदर्शी हैं कि लाजवाब. मगर कुछ ऐसे गूढ़ और गुट्ठल हैं कि गोरख-धंधा ही समझ में नहीं आता. क्यों हैं कुछ व्यक्ति या संघ ऐसे रहस्य और अस्पष्टता के शिकार? कारण खोज निकालने की तड़प ने मुझे हमेशा परेशान रखा है, आज भी परेशान किये हुए है. दीवार बनने में भी यही समस्याएं अनिवार्यतः गुथी हुई हैं.

उदाहरण के लिए संघों या संस्थानों में सबसे अधिक गूढ़ और रहस्यमय खुद 'साम्राज्य' नाम की संस्था है. पीकिंग के शाही दरबार में जरूर इस बात को लेकर कुछ संशय पाये जा सकते हैं... हालांकि यह संशय-शंकाएं सच्चाई कम, छलना या भ्रांति ही अधिक हैं. महाविद्यालयों में रहने वाले राजनीति, कानून और इतिहास के अध्यापक भी इन सारी बातों की कम या नाकाफी जानकारी के कारण शंकाएं करते रहते होंगे. मगर जैसे-जैसे आप निचली कोटि के विद्यालयों में उतरते जायें तो आप पायेंगे कि शिक्षक और शिक्षार्थी, दोनों के मन में अपने ज्ञान को लेकर शंकाएं और जिज्ञासा खुद-ब-खुद ही कम होती चली जा रही है. हां, कुछ धार्मिक किस्म के शब्दाडंबरों और आसमान छूती सतही संस्कृति का घटा-टोप वहां जरूर छाया मिलेगा. क्योंकि यही सब आदर्श शताब्दियों से लगातार लोगों के दिल-दिमाग में ठूंस दिये गये हैं. यों देखें तो इस किस्म के आदेशों में बताये गये शाश्वत-सत्यों का तो कुछ भी नहीं बिगड़ता, मगर उलझन और कुहासे के जाल-जंजाल से बाहर निकलना सामान्य लोगों के बस का हरगिज-हरगिज नहीं है.

मगर मेरा खयाल है कि 'साम्राज्य' विषयक इस खास सवाल का जवाब जनता को मिलना ही चाहिए. साम्राज्य की मूलभूत आधारशिला तो जनता है. यहां मैं स्वीकार करूंगा कि इस बारे में भी सिर्फ अपने जन्म-स्थान की ही बात जानता हूं. हम लोगों का परिचय या तो सूरज-चांद जैसे प्रकृति-देवताओं और उनके पूजा-उत्सवों से है या फिर सम्राट से. प्रकृति-देवताओं के ये उत्सव एक के बाद एक हमारे सारे साल को अपने खूबसूरत सिल-सिले में रंगीन बनाये रखते हैं. इसलिए हम उनसे अच्छी तरह परिचित हैं. लेकिन 'सम्राट' नाम जानते भले ही हों, 'सम्राट' जैसे किसी विशिष्ट और बाकायदा जीवित व्यक्ति को हम नहीं जानते. अगर हमें इतना ही मालूम हो कि सम्राट कौन है, कैसा होता है, तो शायद इस वर्तमान सम्राट के बारे में आगे भी सोचें. अक्सर ही उत्कट जिज्ञासाओं से हमारा मन बेचैन रहता है, और तब हम सम्राट को लेकर तरह-तरह के कुलाबे भिड़ाया करते हैं. आश्चर्य तो सबसे बड़ा यह है कि चाहे घाट-घाट का पानी पिये हुए तीरथिए हों, या हमारे आस-पास के गांव के रहने वाले, इस विषय में किसी से रत्ती भर भी जानकारी नहीं मिलती.

कितना बड़ा है यह हमारा देश! क्या किसी भी उपमा से इसकी लंबाई-चौड़ाई के साथ न्याय किया जा सकता है? इसे नाप सकना आसमान और आसमानी ताकतों के बश का भी नहीं है. पीकिंग तो इसमें बाल बराबर जगह नहीं घेरता. बूंद बराबर. फिर पीकिंग का राजमहल, बूंद से भी छोटा. अच्छा, मान लीजिए कि जहां-जहां महंतशाही है, वहां-वहां सम्राट भी हैं, और वही सर्वशक्तिमान हैं. लेकिन इस समय जो सम्राट सिंहासन पर हैं, वे आखिर होंगे तो हमारे जैसे जीते-जागते आदमी.

काफ्का की लघुकथाएं

राहगीर

जब आप रात को किसी गली में सैर करने निकलें और दूर कहीं कोई आदमी दिखाई पड़ जाये... गली ऊपर पहाड़ी की तरफ जा रही हो जिस पर पूर्णिमा का चांद दमक रहा हो. . . जो दौड़ता हुआ आपकी तरफ आ रहा हो! जो भी हो, आप उसे पकड़कर नहीं रखते, भले हो वह कमजोर और फटीचर प्राणी ही क्यों न हों, चाहे कोई अपनी एड़ियों पर भागता हुआ चिल्लाकर उसका पीछा ही क्यों न कर रहा हो, परंतु आप उसे दौड़ जाने देते हैं.

क्योंकि रात का वक्त है और चांदनी रात में गली ऊपर पहाड़ी की ओर जाती है तो आप कुछ भी नहीं कर सकते. मगर हो सकता है इससे हटकर इन दोनों ने अपने मनोरंजन के लिए ही एक दूसरे को पकड़ने के लिए यह दौड़ शुरू की हो!

परंतु दोनों ही किसी तीसरी चीज का पीछा कर रहे हैं. शायद पहला एक सीधा-सादा आदमी है और दूसरा उसे कत्ल कर देना चाहता है. . .और तब आप इस अपराध में उसके सहायक बन जायेंगे. . . या शायद वे एक दूसरे के बारे में कुछ भी नहीं जानते और सिर्फ सोने के लिए घर की ओर दौड़ रहे हैं!. . . शायद वे रात में निकलने वाले पंछी हैं!. . . शायद पहला आदमी हथियार बंद है!

जो भी हो, क्या आपको थक जाने का हक नहीं है? क्या आप काफी शराब नहीं पीते रहे? खैर, आपको शुक्रगुजार होना चाहिए कि दूसरा आदमी आपकी नजर से ओझल हो गया है. □

गली में खुलती खिड़की

तनहा जिंदगी बिताने के बावजूद हर कोई यदा-कदा अपने आपको कहीं न कहीं जोड़ना चाहता है. चाहे कोई भी हो, दिन के वक्त, मौसम, अपने काम-धंधे की हालत तथा रुचि में बदलाव के अनुसार वह अचानक कोई ऐसी बांह देखना चाहता है, जिसके साथ वह लिपट सके. —गली की तरफ खुलने वाली खिड़की के बिना वह बहुत देर तक गुजर नहीं चला सकता. वह चाहे किसी भी चीज की इच्छा न करने के मूड में हो, तब वह थका हुआ सिर्फ अपनी खिड़की के पास चला जाता है. . . और अपनी आंखें लोगों से हटाकर आसमान और आसमान से फिर लोगों की तरफ दौड़ता है, बाहर न देखने की इच्छा होने पर अपना सिर कुछ नीचे झुका लेता है, तब भी घोड़े उसे अपनी बग्घियों और शोरगुल की तरफ आकर्षित कर लेंगे और इस तरह आखिर वह कम से कम आदम-संगति की ओर तो खिंचेगा ही! □

(अनुवाद : सत्येंद्र शर्मा)

हो सकता है, बहुत ही बड़े पलंग पर सोते हों, या शायद यह पलंग भी उन्हें छोटा ही पड़ता हो. वे जब बहुत थक जाते होंगे, तो हमारी ही तरह अंगड़ाई लेते होंगे—सुकुमार-सुडौल मुंह फाड़कर हमारी ही तरह जमुहाई लेते होंगे. लेकिन हम यहां तिब्बती पठारों के सीमा-प्रदेश पर रहने वाले यह सब जानें तो जानें कैसे? अलावा इसके कोई भी हलचल, कोई भी उथल-पुथल मान लो, अगर हम तक आयी भी, तब तक बात ठंडी भी हो गयी होती है. एक धारणा यह भी है कि सम्राट अत्यंत बुद्धिमान व्यक्ति हैं, जाने किन-किन अजीबो-गरीब किस्म के सरदारों और दरबारियों से हमेशा घिरे रहते हैं. सेवकों और हित चाहने वालों के बारे में द्वेष और दुश्मनी उनके चारों ओर मंडराया करती है. और मानो शाही ताकतों को तुर्की-ब-तुर्की जवाब देने के लिए ये लोग हाथों में जहर बुझे तीर साधे हुकूमत का तख्ता उलटने की तिकड़मों में रात-दिन एक किये रहते हैं. साम्राज्य अमर हो सकता है, लेकिन सम्राट तो सिंहासन से लुढ़कते और गिरते ही हैं. यही क्यों, बड़े से बड़े राजवंश देखते-देखते दम तोड़कर सदा के लिए धूल में मिट जाते हैं. लेकिन इन सारे भीतरी संघर्षों और यातनाओं को जनता कभी नहीं जान पाती. आंखें चुराये, थके-पस्त आनजान आदमी के रूप में जनता किसी भीड़भाड़ में धक्कम-धुक्का करती, किनारे की गली में खड़ी, साथ लाये चने-चबेने को चपर-चपर खाती रहती है, और इसी सड़क पर आगे जाकर—यानी शहर के बीच बाजार वाले चौराहे पर उनके सम्राट को फांसी पर लटकाये जाने की तैयारियां हो रही होती हैं.

▣

ठीक ऐसी ही आशा भरे और आशाहीन मन से हमारी जनता सम्राट को लेकर कल्पना चित्र बनाया करती है. पता उसे यह भी नहीं होता कि किस सम्राट का शासन है. राजवंश के नाम को लेकर तो उनमें हमेशा सिर-फुटौवल होती रहती है. विश्वविद्यालयों में, राजवंशों और किस के बाद कौन राजा आया, को लेकर काफी कुछ पढ़ाया जाता है, लेकिन इस बारे में घपला कुछ ऐसा सार्वभौमिक है कि बड़े-से-बड़ा तीसमारखां चौकड़ी भूल जाता है. जाने कब-कब के मरे-खपे सम्राट हमारे गांव में पुनर्जीवित होकर राज्याभिषेक पा जाते हैं. अभी कुछ दिनों पहले ही पुरोहितजी ने वेदों को साक्षी बनाकर एक घोषणा पत्र पढ़ा था; तुर्रा यह कि प्राचीन लोकगीतों को छोड़कर इस सम्राट का कहीं किसी ने नाम भी नहीं सुना. इतिहास की पुरानी लड़ाइयों की सूचना हमारे लिए एकदम ताजा खबर की तरह आती है. किसी भी क्षण कोई पड़ोसी बच्चों जैसे जोश से दमदमाता चेहरा लिये, ऐसी ही कोई खबर लिये दौड़ा चला आ सकता है. लाड़-प्यार में बिगड़ी, घमंड में दुहरी सम्राज्ञियां देश-विदेश में नित नये कारनामे करती हमारे यहां हर वक्त ही घूमती रहती हैं. कोई कुटिल दरबारियों के चक्कर में कुलीन-पथ छोड़कर गलत राहों में भटक गयी है तो किसी की महत्वाकांक्षा बेकरार ही उठी है, किसी के भीतर लालच का सांप फुफकार रहा है, तो कोई वासना में मतवाली अपने पराये का ज्ञान भूल गयी है. समय की कब्र में जितनी गहरी वह दफन होती चली जाती है; उसकी

करतूतों पर उतना ही पानी बढ़ता चला जाता है. हजारों साल पहले कैसे किसी सम्राज्ञी ने लंबे-लंबे घूंट भरकर अपने स्वामी का खून पिया था, यह कहानी सुनकर आज भी हमारा गांव दर्द से कराह उठता है.

▣

ठीक उसी तरह, हमारी जनता पर न तो क्रांतियों का ही कोई खास असर पड़ता है न सामाजिक लड़ाइयों का. लड़कपन की एक घटना याद आती है. पड़ोस के, लेकिन काफी दूर-दराज प्रांत में एक बार विद्रोह उठ खड़ा हुआ. कारण क्या बना था, आज याद नहीं. उससे कोई फर्क भी नहीं पढ़ता. लोगों का क्या है, यों ही बात-बेबात भड़क जाते हैं. विद्रोह का कोई भी बहाना निकालने में देर ही कितनी लगती है? हां, तो उन दिनों हमारे प्रांत से होकर एक भिखारी गुजरा और वह विद्रोहियों द्वारा प्रकाशित एक पर्चा बापू को दे गया. संयोग से उसी दिन हमारे यहां दावत थी और सारे कमरे मेहमानों से भरे थे. पुरोहितजी बीच में आसन जमाये बैठे थे. उन्होंने पर्चे को ध्यान से पढ़ा. अचानक लोगों में जो हंसी-मजाक का दौर शुरू हुआ तो उसी छीना-झपटी में पर्चा फट-फटा गया. भिखारी को भीख तो पहले ही मिल चुकी थी. लेकिन पर्चा पढ़ने के बाद उसकी जो लात-घूंसों से खातिर हुई कि बेचारे से भागते ही बना. उसके जाते ही उस सुहाने दिन, मौज मनाने के लिए मेहमान छंट गये. क्यों? क्योंकि उस पड़ोसी प्रांत की जबान हमारी जबान से एकदम अलग ही नहीं है, लेखन में भी कुछ ऐसी तोड़-मरोड़ होती है कि आपसी दूरी बनी ही रहती है. हमारे लिए तो ये अक्षर गोले-गोले से लगते हैं. इसीलिए पुरोहितजी ने दो पंक्तियां भी नहीं पढ़ी होंगी कि हमने फैसले कर लिये.

ऐसी न जाने कितनी बातों का पुराने इतिहास में जिक्र मिलता है. उसके पीछे जो दुख-दर्द या यातनाएं रही होंगी, वे जाने कब की खत्म हो चुकी हैं. आज याद करते-करते मुझे लगता है कि वर्तमान विभीषिका को कैसे अकाट्य रूप में वह भिखारी हमारे दरवाजे तक लाया था, लेकिन हम थे कि सिर-पूंछ झटककर एक शब्द तक सुनने को तैयार नहीं थे. वर्तमान को मार भगाने के लिए हमारी जनता ऐसे ही खार खाये बैठी रहती है. . . . .

इस सबको देखकर अगर यह नतीजा निकलता हो कि यहां 'सम्राट' जैसी कोई चीज नहीं है तो बहुत झूठ नहीं होगा. मगर बार-बार याद दिलाने की बात यह भी है कि सम्राट के नाम पर जान निछावर करने वाले, दक्षिण में अकेले हम ही हैं. हो सकता है खुद सम्राट को हमारी इस भक्ति का पता ही न हो. इसके लिए हम जिम्मेदार हैं भी नहीं. यह सही है कि गांव के सिरे वाले छोटे-से खंबे पर जो अजगर-देवता बैठे हैं न, वे आज भी वहीं हैं और जबसे मनुष्य की स्मृति का अस्तित्व है तभी से पीकिंग की ओर मुंह किये श्रद्धांजलि के रूप में अग्निल फूफकारें छोड़ते हैं. मगर हमारे गांव वाले हैं कि जिन्हें यही नहीं पता कि पीकिंग किस चिड़िया का नाम है; वह इसी लोक में है या किसी दूसरे लोक में. गांव की पहाड़ी पर चढ़कर जिधर निगाह दौड़ाओ, मैदान में कोसों तक घर ही घर फैले हों और इन मकानों के बीच रात-दिन लोगों की धक्कम-धक्का भीड़ बनी रहती हो—क्या ऐसा भी सचमुच कोई 'गांव' हो सकता है? ऐसे किसी भी शहर की कोई तस्वीर हमारे दिमाग में नहीं समा पाती. हां, यह विश्वास हम जरूर कर लेते हैं कि पीकिंग और सम्राट दोनों एक ही हैं और वे सूर्य की छांव में, अविचल भाव से युगांतरों के प्रवाह में निरंतर बहते चले आ रहे हैं.

इस प्रकार की धारणाएं पालने के पीछे वास्तव में हमारी जिंदगी का संपूर्ण रूप है, जिस पर न कोई दबाव है न कोई बाधा. इस जिंदगी पर वर्तमान का कोई कानून नहीं लागू होता. बस, न जाने कब से चली आती जबरन वसूली और ऐलानों के ही दर्शन अक्सर होते रहते हैं. मैं नहीं चाहता कि सब धान बाईस पंसेरी तुलें. इसलिए चीन के पांच सौ प्रांतों की बात नहीं कह सकता. यह भी नहीं कह सकता कि मेरे प्रांत के सारे गांव ही हमारे गांव जैसे हैं. मगर इस दीवार में चूंकि दुनिया भर के लोगों का योगदान रहा है, हर प्रांत के लोग आये हैं—इससे समझदार आदमी को कमोबेश हर प्रांत की आत्मा की झांकी का एक मौका जरूर हाथ आता है.

इसी आधार पर और अपने व्यक्तिगत निरीक्षण, या इस विषय में पढ़ी अनेक पुस्तकों की बिना पर एक बात शायद मैं जरूर कह सकता हूं कि सम्राट के लिए हमारे गांव की जो कुछ धारणा है, उसमें शर्तिया कुछ न कुछ ऐसा है, जो सार्वभौतिक और सर्वव्यापी है. यानी सभी जगह समान रूप से प्रचलित है. मेरा आशय जनता के इस रवैये को गुण के रूप में प्रस्तुत करना कतई नहीं है, बल्कि बात उल्टी है. वस्तुतः उसकी मूलभूत जिम्मेदारी तो सरकार की ही है. संसार का प्रचीनतम साम्राज्य होने के बावजूद क्यों यह सरकार, साम्राज्य-व्यवस्था को ऐसा पक्का निर्दोष और अचूक रूप दे सकने में असमर्थ रही या उस ओर से आंखें मूंदे रही कि धुर सरहदी प्रांतों में भी उसका कार्य सुचारू-सीधे और अनवरत ढंग से चलता रह सके. उधर दूसरे पहलू से देखें तो यह जनता की अपनी कल्पना-शक्ति और आस्था की कमजोरी ही मानी जायेगी कि वे पीकिंग को इस घुटन और सड़ांध से बाहर निकालकर खड़ा नहीं कर पाती—उसे साक्षात और यथार्थ मानकर, बाहें फैलाकर, छाती से नहीं लगा पाती. साम्राज्य की तो सचमुच एकमात्र इच्छा अभी भी यही है कि आखिरी सांस से पहले एक बार तो अपनी जनता के इस स्पर्श को महसूस कर सके. . . . .

▣

बहरहाल, जनता के इस रवैये को गुण तो निश्चय ही नहीं कहा जा सकता. इस पर तुर्रा यह कि हमारी जनता को एक करने वाला तत्व यही दुर्गुण है. चाहें तो कह सकते हैं कि यही वह धरती है जिस पर हम लोगों की जिंदगी चलती है. एक आधारभूत बुराई को बाकायदा स्थापित किये चले जाने का अर्थ है अपनी आत्मा और चेतना की जड़ें खोदते जाना. यही नहीं खुद अपने पैरों कुल्हाड़ी मारना! इससे बढ़कर बुरी बात और क्या होगी. यही वजह है कि मैं अब इन सवालों की ज्यादा बाल की खाल उधेड़ना बंद करता हूं. □

(अनुवाद : राजेंद्र यादव)

फैसला

काफ्का की कहानियां : दो

बसंत का मौसम. रविवार की एक सुबह. जार्ज बैंडेमन, एक युवा व्यापारी, नदी के किनारे बने छोटे-छोटे टेढ़ें-मेढ़े मकानों में से एक में पहली मंजिल पर अपने कमरे में बैठा था. ये मकान एक-दूसरे से इतने मिलते-जुलते थे कि सिर्फ ऊंचाई और रंगों से ही उनको अलग से पहचाना जा सकता था. उसने विदेश में बस रहे एक पुराने मित्र को एक पत्र लिखकर अभी-अभी समाप्त किया था और उसे धीरे-धीरे अलसाये-से मूड में लिफाफे में डाल रहा था. उसने अपनी कुहनियां मेज पर टिका रखीं थीं और खिड़की से बाहर नदी, पुल और नदी के दूसरी तरफ हल्की हरियाली लिये पहाड़ियों की तरफ देख रहा था.

दरअसल वह अपने दोस्त के बारे में सोच रहा था, जो वास्तव में अपने घर, अपने शहर से ऊबकर रूस भाग गया था. आजकल वह सेंट पीटर्सबर्ग में व्यापार कर रहा था. शुरू-शुरू में उसका व्यापार चल निकला था, पर अब अरसे से घाटे में चल रहा था. हालांकि वह अब यहां बहुत कम आता था, पर जब भी आता, अपने व्यापार की पतली हालत के बारे में शिकायत किया करता था. इस तरह वह अब बेकार ही विदेश में टिका हुआ था. उसने अब तक दाढ़ी रख ली थी. यह दाढ़ी उस पर फबती नहीं थी और इसमें उसका वह चेहरा भी जो जार्ज बचपन से पहचानता आया था, छिप नहीं पाता था.

उसकी रंगत भी अब पीली पड़ने लगी थी मानो किसी गुप्त रोग के बारे में संकेत कर

रही हो. अपनी ही वजह से वह वहीं अपने साथी देशवासियों के समाज से कोई नियमित संबंध नहीं बना पाया था और रूसी परिवारों के साथ भी उसके संबंध न के बराबर थे. इस तरह वह स्थायी कुंवारे का-सा बेकार जीवन बिता रहा था.

ऐसे आदमी को लिखा भी क्या जा सकता है, जो स्पष्टतः ही लीक से हट गया हो. ऐसा आदमी जिसके लिए अफसोस तो किया जा सके, पर जिसकी मदद न की जा सके. क्या कोई उसे वापस आने की, अपने आपको फिर से अपनी मिट्टी से जुड़ने, अपने पुराने दोस्तों में आ मिलने की सलाह दे? उसे रोकने वाला, और उसे अपने दोस्तों की मदद पर भरोसा करने से रोकने वाला क्या कोई नहीं था! पर यह सब कुछ उसे बेकार बताने जैसा ही था. उसे जितनी अच्छी तरह समझाया गया, उसने उससे उतना ही ज्यादा बुरा माना—कि अब तक उसके सारे प्रयत्न निष्फल हो चुके हैं कि अब उसे हार मान लेनी चाहिए, घर वापस आ जाना चाहिए और घूम-फिरकर लौट आये घुमक्कड़ की तरह हर आदमी द्वारा घूर-घूरकर देखा जाये कि सिर्फ उसके दोस्त ही जानते हैं कि असलियत क्या थी और कि वह खुद एक बड़ा बच्चा ही तो था, जिसे अपने सफल और गृहस्थ दोस्तों की सलाह मानते हुए काम करना चाहिए. ऐसे ही कारण थे कि अगर उससे कोई पत्र व्यवहार बनाये रखना भी चाहता तो उसे कोई सच्ची खबर नहीं भेज सकता था, जो अक्सर बहुत दूर के परिचितों को भी निःसंकोच बतायी जा सकती थी. इस बात को तीन साल से भी ज्यादा बीत चुके थे. जब वह आखिरी बार यहां आया था और इसके लिए वह यही बेतुका तर्क देता रहा कि रूस की राजनैतिक परिस्थितियां बहुत अधिक अनिश्चिततापूर्ण थीं और ऐसी परिस्थितियों में उस जैसे छोटे-से व्यापारी के लिए भी थोड़े समय के लिए भी रूस छोड़कर जाना संभव नहीं था, हालांकि उन्हीं परिस्थितियों में सैकड़ों-हजारों रूसी-नागरिक आराम से विदेशी यात्राएं करते रहते. लेकिन इन वर्षों में खुद जार्ज के जीवन में बहुत से परिवर्तन आ गये थे. दो वर्ष पहले उसकी मां का देहांत हो गया था और तबसे वह और उसके पिता घर के काम-काज में मिल-बांटकर काम करते रहे थे. इसकी खबर उसके दोस्त को भी दे दी गयी थी और उत्तर में उसने अपने पत्र में इतने रूखे ढंग से सहानुभूति प्रकट की थी कि यह मानना ही पड़ेगा कि ऐसे मौकों पर होने वाले दुःख को एक दूसरे देश में रहते हुए महसूस नहीं किया जा सकता.

■

खैर, तभी से जार्ज ने अपने आपको अधिक दृढ़ निश्चय के साथ अपने व्यापार और दूसरी बातों में व्यस्त कर लिया था.

शायद तब उसकी मां जीवित थी, जब पिता के इस आग्रह पर कि व्यापार में सब कुछ उसके अपने तरीके से होना चाहिए, वह अपनी कोई वास्तविक गतिविधि, निजी रुचि विकसित नहीं कर सका था. शायद उसकी मां के मरने के बाद उसके पिता की उग्रता मंद पड़ गयी थी, हालांकि वे अपने व्यापार में अभी भी चुस्त थे. शायद इसके पीछे मुख्य रूप से यही कारण था कि उनका भाग्य अचानक चमक उठा था, जिसकी दरअसल बहुत अधिक संभावना भी थी. पर कुछ भी हो, इन दो वर्षों में उनका व्यापार बहुत तेजी से बढ़ता चला गया था. कर्मचारियों की संख्या दुगनी करनी पड़ी थी, लाभ पांच गुना बढ़ गया था. इसमें कोई शक नहीं कि अभी उसे और बढ़ना था.

लेकिन जार्ज के मित्र को इस सारी उन्नति का कोई आभास नहीं था. शुरू-शुरू के वर्षों में शायद सांत्वना के अपने आखिरी पत्र में उसने जार्ज को रूस में आकर बस जाने के लिए प्रेरित करने की कोशिश की थी. जिस किस्म का व्यापार खास तौर पर जार्ज कर रहा था, उसकी सफलता की संभावनाओं को उसने बढ़ा-चढ़ाकर लिखा था. उसने जो आंकड़े दिये थे, वे जार्ज के वर्तमान व्यापार के आंकड़ों के सामने नगण्य थे. फिर भी वह अपने दोस्त को अपने व्यापार की सफलता के बारे में बताने से सकुचा रहा था. और अगर वह इस सबके बारे में ब्योरेवार लिखता तो यह सचमुच ही बड़ा अजीब-सा लगता.

■

इसलिए जार्ज ने अपने दोस्त को बेसिर-पैर की ऐसी बातें लिखने का निश्चय किया, जो किसी शांत रविवार को बैठे सोचते हुए यूं ही स्मृति पटल पर आ उभरती हैं. उसने सिर्फ यही चाहा कि वह उसके अपने घर, उसके अपने शहर के विचार को, जिसे उसके दोस्त ने इस लंबे अंतराल के दौरान निश्चय ही अपने संतोष के अनुसार बदल लिया होगा, अनछुआ ही रहने देना चाहता था, और जार्ज के साथ हुआ यह कि उसने तीन अलग-अलग समयों पर तीन खासे लंबे पत्रों में अपने मित्र को एक बिल्कुल साधारण आदमी की उतनी ही साधारण लड़की के साथ सगाई के बारे में लिखा था, और मजे की बात कि नीयत के बिल्कुल विपरीत उसके दोस्त ने इस घटना विशेष में रुचि प्रकट करनी शुरू कर दी थी.

फिर भी, जार्ज ने ऐसी ही चीजों के बारे में लिखना पसंद किया, बजाय यह मानने के कि एक महीना पहले फरीदा ब्रांडफेल्ड नाम की एक खाते-पीते घर की लड़की से उसकी सगाई हो गयी थी. वह अक्सर अपनी मंगेतर से अपने इस दोस्त के बारे में बातचीत किया करता. वह उसे अपने इस दोस्त के साथ पत्र-व्यवहार के दौरान बन गये इस खास किस्म के संबंध के बारे में बतलाया करता था.

"तो इसका मतलब यह कि वह हमारी शादी में नहीं आयेगा", वह कहती, "फिर भी मुझे तुम्हारे सभी दोस्तों के बारे में जानने का पूरा अधिकार है." जार्ज ने उत्तर दिया, "नहीं, मैं उसे कष्ट नहीं देना चाहता. मुझे गलत मत समझो, वह शायद आ जाये. जहां तक मेरा खयाल है, वह आ सकता है. लेकिन वह सोचेगा कि उसे जबरदस्ती बुलाया गया है. इससे उसे दुःख पहुंचेगा. शायद वह मुझसे ईर्ष्या करने लगे. तब वह निश्चय ही असंतुष्ट रह जायेगा. और अपनी असंतुष्टि के लिए कुछ भी न कर पाने के कारण उसे फिर से अकेला रह जाना पड़ेगा. अकेला...तुम्हें इसका मतलब पता है?"

"हां, पर क्या उसे हमारी शादी के बारे में किसी और जरिये से पता नहीं चल जायेगा?"

"इस पर मेरा कोई बस नहीं. दरअसल, लेकिन ऐसा होगा नहीं, जिस ढंग का जीवन वह जीता है, उससे तो ऐसा नहीं लगता."

"तुम्हारे दोस्त हा ऐसे हैं जार्ज, इसलिए तुम्हें कभी सगाई करनी ही नहीं चाहिए थी."

"खैर, इसके लिए हम दोनों ही कसूरवार हैं. मगर अब मैं इसे किसी दूसरे रूप में नहीं लूंगा."

और तब उसके चुंबनों के नीचे तेज चलती सांस से वह कहती ही रही, "एक ही बात है. मुझे अच्छा नहीं लग रहा है." उसने सोचा, 'काश, वह अपने दोस्त को यह खबर भेज ही देता तो कम से कम उसे इन सब पचड़ों में तो न पड़ना पड़ता. आदमी हो तो मेरे जैसा. उसे मुझे ऐसे ही स्वीकार करना पड़ेगा, जैसा मैं हूं'. उसने खुद से कहा, "उसके लिए एक अच्छा दोस्त बनने के लिए मैं अपने आपको किसी दूसरे रूप में नहीं ढाल सकता."

■

और सचमुच ही उसने अपने दोस्त को उस लंबे पत्र में, जो वह उस रविवार की सुबह लिख रहा था, इश्क में अपनी सफलता के बारे में लिख ही दिया. उसने लिखा, 'मैं इन आखिरी पंक्तियों तक अपनी सबसे बढ़िया खबर छुपाये रहा. फरीदा ब्रांडेनफेल्ड नाम की एक खाते-पीते घर की लड़की से मैंने सगाई कर ली है. वह तुम्हारे यहां से चले जाने के बहुत बाद यहां रहने आयी थी, इसलिए तुम्हारा उससे परिचय होने का कोई सवाल ही नहीं उठता. समय आने पर मैं तुम्हें उसके बारे में और भी बातें बताऊंगा. आज मुझे सिर्फ इतना ही कहने दो कि मैं बहुत खुश हूं और तुम्हारे-मेरे बीच के संबंध में केवल यही परिवर्तन आया है कि एक आम किस्म के दोस्त की बजाय तुम्हें अब एक बहुत खुश दोस्त मिल जायेगा. इसके अलावा तुम मेरी मंगेतर का परिचय पाओगे, उसकी अंतरंगता पाओगे. वह तुम्हें हार्दिक शुभकामनाएं भेज रही है और शीघ्र ही तुम्हें स्वयं ही पत्र लिखेगी. लड़कों के लिए लड़कियों की सच्ची मित्रता कितनी सुखद होती है! और जब लड़का कुंवारा हो तब तो कहने ही क्या! तुम्हें भी उसकी सच्ची मित्रता मिलेगी. मैं जानता हूं, तुम्हारे पास हमें देखने न आ पाने के लिए बहुत से कारण हैं, लेकिन मेरी शादी ही क्या, जब तुम अपनी सारी अड़चनों को अलविदा न कह दो! फिर भी, जैसे भी हो, अपने और सिर्फ अपने हित को देखते हुए तुम जो भी उचित समझो, करो.' अपने इस पत्र को हाथ में लिये जार्ज देर से अपने कमरे में मेज पर बैठा सोच रहा था. खुली खिड़की से बाहर देखते हुए वह न जाने किस दुनिया में लीन था. तभी गली में से गुजरते हुए किसी परिचित ने उसे नमस्ते की. उसने अन्यमनस्क-सी एक खोई हुई मुस्कान से उसे उत्तर दे दिया.

आखिर उसने पत्र अपनी जेब में डाल ही दिया और अपने कमरे से निकलकर गलियारे से होता हुआ अपने पिता के कमरे में आ गया. इस कमरे में वह महीनों से नहीं आया था. दरअसल उसे इस कमरे में आने की जरूरत ही नहीं पड़ती थी, क्योंकि वह अपने पिता से रोज व्यापार के सिलसिले में मिल ही लेता था. दिन में खाना भी वे इकट्ठा ही एक होटल में खाया करते थे. हां, इतना जरूर था कि दोनों ही अपनी शामें अपनी मर्जी से बिताया करते थे. जार्ज अपने दोस्तों के साथ अक्सर बाहर निकल जाया करता था. पिछले दिनों से वह अपनी मंगेतर से मिलने चला जाता था. फिर भी, दूसरे दिनों में वे बैठक में अपना अखबार लिये थोड़ी देर के लिए जरूर बैठ जाते.

इस धूप भरी सुबह के वक्त भी अपने पिता के कमरे में अंधेरा देखकर जार्ज चौंका. तंग आंगन के दूसरी तरफ की दीवार के कारण वहां और भी अंधेरा लग रहा था. उसके पिता खिड़की के पास बैठे अखबार पढ़ रहे थे. उन्होंने अखबार इस ढंग से पकड़ रखा था, मानो अपने दृष्टिकोण पर काबू पाने की कोशिश कर रहे हों. उनके ठीक ऊपर जार्ज की स्वर्गीय मां की कई तस्वीरें टंगी हुई थीं. मेज पर नाश्ते की जूठन पड़ी हुई थी. लगता था, उसमें से बहुत थोड़ा खाया गया था.

"अरे, जार्ज!" उसके पिता ने उससे मिलने के लिए उठते हुए कहा.

"मेरे पिता अभी भी आदमियों में दैत्य की तरह लगते हैं." जॉर्ज ने अपने-आपसे कहा.

"यहां कितना अंधेरा है!" उसने जोर से कहा.

"हां, काफी अंधेरा है." उसके पिता बोले.

"और आपने खिड़की भी बंद कर रखी है."

"मुझे ऐसे ही अच्छा लगता है."

"हां, बाहर तो बहुत गर्म है." जार्ज ने कहा, मानो अपनी पिछली बात पूरी कर रहा हो. फिर वह बैठ गया.

उसके पिता ने नाश्ते की जूठी प्लेट हटायी और उसे एक तिपाई पर रख दिया.

"मैं दरअसल आपको यही बताना चाहता था", जार्ज, जो इतनी देर से निरुद्देश्य ही बूढ़े पिता के हाव-भाव देख रहा था, ने कहना जारी रखा, "मैं अपनी सगाई की खबर सेंट पीटर्सबर्ग भेज रहा हूं." उसने अपनी जेब से पत्र थोड़ा-सा बाहर निकाला और उसे फिर जेब में डाल लिया.

"सेंट पीटर्सबर्ग?" पिता ने पूछा

"वहां मेरा मित्र है." जॉर्ज ने अपने पिता से आंखें मिलाने की कोशिश करते हुए कहा. वह सोच रहा था कि उसके पिता व्यापार में तो बिल्कुल ही अलग लगते हैं, यहां इस समय कैसे बाहें लपेटे तनकर बैठे हुए हैं!

"ओह, हां, अपने दोस्त को!" उसके पिता ने एक खास तरह का जोर देते हुए कहा.

■

"आप जानते ही हैं पिताजी, कि मैं उसे सबसे पहले अपनी सगाई के बारे में बताना चाहता था. उसके लिए मेरे मन में जो चिंता रहती है, सिर्फ उसी कारण से मैं उसे यह समाचार देना चाहता था. आप स्वयं जानते हैं कि वह टेढ़ा आदमी है. मैंने सोचा कि कोई और उसे मेरी सगाई के बारे में बता देगा. हालांकि वह इस किस्म का जीव है कि उससे इसकी उम्मीद नहीं की जा सकती. फिर भी, मैं अपने आपको रोक नहीं पाया, पर...पर...मैं उसे खुद कभी भी बताने नहीं जा रहा था."

"और अब तुमने अपना इरादा बदल दिया है." उन्होंने अखबार को खिड़की की सिल पर रखते हुए उसपर अपनी ऐनक रखकर उसे हाथ से ढंकते हुए पूछा.

"जी हां, मैं... मैं इस बारे में सोचता रहा हूं. अगर वह

मेरा सच्चा दोस्त है. मैंने सोचा, तो मेरी सगाई की खुशखबरी सुनकर उसे भी खुश होना चाहिए था. और इसलिए मैं उसे बताने से अपने आपको और अधिक रोक नहीं पाया, पर चिट्ठी डालने से पहले मैं आपको बताना चाहता था!"

"जार्ज," अपने दंत-विहीन मुंह को फैलाते हुए उसके पिता ने कहा, "मेरी बात सुनो, तुम मेरे पास इसके बारे में कहने और बात करने आये हो. इसमें कोई शक नहीं कि इस तरह तुमने मुझे सम्मान दिया है, लेकिन यह कुछ भी मायने नहीं रखता. यह न होने से भी ज्यादा गलत बात है कि तुम मेरे सामने पूरी सच्चाई न रखो. मैं उन मामलों को यहां छेड़ना नहीं चाहता, जिनकी चर्चा यहां नहीं की जानी चाहिए. जबसे तुम्हारी प्यारी मां गुजरी है, तबसे कई चीजें ऐसी हो गयी हैं, जो ठीक नहीं हैं. हो सकता है, उन सबको उठाने, उन सब पर बात करने का कभी सही समय आये. हो सकता है, हम जल्दी ही उन पर सोचें. व्यापार में ही कई चीजें ऐसी हुई हैं, जिनके बारे में मुझे पता नहीं है. हो सकता है, वे मेरे पीठ पीछे न हुई हों. मैं यह नहीं कहना चाहता कि वे मेरी पीठ पीछे हुई हैं. मैं चीजों के पीछे बराबर नहीं रहा हूं. मेरी याददाश्त कमजोर होती चली जा रही है. कई चीजों का ध्यान मैं अब एक साथ नहीं रख पाता. यह कुदरत की मार है, जो पहले नंबर पर है. दूसरे नंबर पर है, तुम्हारी मां की मौत का सदमा, जिसने मुझे तुमसे कहीं ज्यादा तोड़ दिया है. पर चूंकि अब इस बारे में हम बात कर रहे हैं, इस पत्र के बारे में बात कर रहे हैं, मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूं जार्ज, मुझे धोखा मत दो. यह एक तुच्छ मामला है. यह चर्चा करने लायक भी नहीं है, इसलिए मुझे धोखा मत दो. क्या सेंट पीटर्सबर्ग में सचमुच तुम्हारा यह दोस्त रहता है?"

▣

जार्ज हकबकाकर खड़ा हो गया. "कोई बात नहीं मेरे दोस्तो, मेरे हजार दोस्त भी मेरे पिता की बराबरी नहीं कर सकते. क्या आप जानते हैं, मैं क्या सोचता हूं? आप अपना खयाल नहीं रख रहे हैं, पर बुढ़ापे का तो खयाल रखा ही जाना चाहिए. आप अच्छी तरह जानते हैं, मैं आपके बिना व्यापार नहीं चला सकता. लेकिन अगर व्यापार से ही आपकी सेहत पर बुरा असर पड़ रहा हो तो मैं कल ही उसे हमेशा के लिए बंद कर देने के लिए तैयार हूं, और इससे कुछ होगा नहीं. हमें आपके जीने के ढंग में ही कोई परिवर्तन करना होगा, कोई ठोस परिवर्तन. आप यहां अंधेरे में बैठते हैं. जबकि बैठक में आप देखेंगे कि कितना प्रकाश है. आप अपनी शक्ति के अनुसार नाश्ता लेने की बजाय थोड़ा खाकर छोड़ देते हैं. आप खिड़की के पास बैठे रहते हैं. आप सोचिए, ताजी हवा आपके लिए कितनी फायदेमंद होगी! नहीं पिताजी! मैं डॉक्टर को बुलाऊंगा और हमें उनके आदेश मानने ही होंगे. हम आपका कमरा बदल देंगे. आप मेरे कमरे में आ सकते हैं. मैं यहां आ जाता हूं. आपको इस तरह कमरा बदलने का पता भी नहीं चलेगा. मैं आपकी सारी चीजें आपके साथ भिजवा दूंगा, पर उनके लिए अभी समय है. फिलहाल मैं आपको थोड़ी देर के लिए बिस्तर पर लिटा देता हूं. मुझे पक्का विश्वास है, आपको आराम की जरूरत है. आइए, मैं कपड़े बदलने में आपकी मदद करूं. आप देखिए, मैं यह काम कितनी अच्छी तरह कर सकता हूं. और यदि आप सामने वाले कमरे में अभी चलना चाहें तो आप इस समय मेरे बिस्तर पर लेट सकते हैं. आपके लिए यही सबसे अच्छा रहेगा."

जार्ज अपने पिता के पास खड़ा हो गया. उन्होंने अपना सफेद उलझे बालों से भरा सिर अपने सीने पर झूल जाने दिया था.

"जार्ज," उसके पिता ने बिना हिले-डुले धीमी आवाज में कहा. जार्ज एकदम अपने पिता के पास घुटनों के बल बैठ गया. अपने पिता के थके हुए चेहरे पर उसने उनकी फैली हुई पलकों को देखा. वे लगातार अपनी आंखों के कोनों से उसे देख रहे थे.

"पीटर्सबर्ग में तुम्हारा कोई दोस्त नहीं है. तुम हमेशा ही दूसरों की टांग खींचते रहे हो, और तुम अब मेरी टांग खींचने से भी बाज नहीं आये हो. तुम्हारा वहां कोई दोस्त कैसे हो सकता है? मैं नहीं मान सकता!!"

"इस पर थोड़ा सोचकर देखिए पिताजी," अपने पिता को कुर्सी पर सहारे से खड़ा करके उनका ड्रेसिंग गाउन उतारते हुए जार्ज ने कहा, "जब वह पिछली बार यहां आया था, तबसे तीन साल बीत चुके हैं. मुझे याद है, आप उसे पसंद नहीं करते थे. कम से कम दो बार मैंने उसको आपके सामने पड़ने से बचाया था. हालांकि तब वह मेरे कमरे में ही मेरे साथ बैठा हुआ था. मैं उसे पसंद न कर पाने के आपके कारणों को अच्छी तरह समझता था. मेरे दोस्त की अपनी कुछ विशेषताएं हैं. पर फिर, आप उससे अच्छी तरह बात करने लगे थे. मुझे गर्व होने लगा था, क्योंकि आप उसकी बात सुनते थे, सिर हिलाते थे और उससे प्रश्न पूछा करते थे. यदि आप फिर से सोचें तो आपको याद आ ही जायेगा. वह हमें रूसी क्रांति की अविश्वसनीय कहानियां सुनाया करता था. जैसे उसने यह बताया था कि वह अपने व्यापार के सिलसिले में एक बार कीव गया हुआ था. वहीं तब दंगा हुआ था और तब उसने एक पादरी को बालकनी पर खड़े देखा था. उसने अपनी हथेली पर चाकू से बड़ा-सा क्रॉस काटा था और अपना खून से रंगा हाथ उठाकर लोगों से अपील की थी. उसके बाद आप खुद दो-एक बार यह कहानी सुना चुके हैं."

▣

इस बीच जार्ज अपने पिता को बिठाने और धीरे-धीरे उनके कपड़े उतरवाने में सफल हो गया था. उसने उनकी गर्म पैंट उतारी, जो उन्होंने सूती जुराबों और कच्छे के ऊपर पहनी हुई थी. उनका यह गंदा कच्छा देखकर उसने अपने आपको अपने पिता के प्रति लापरवाह होने के लिए कोसा. यह निश्चित ही उसका कर्त्तव्य था कि वह देखे कि उसके पिता को कपड़े, कच्छे आदि साफ-सुथरे मिल जाया करें. उसने अभी अपनी होने वाली दुल्हन को यह साफ-साफ नहीं बताया था कि भविष्य में वे अपने पिता के लिए क्या व्यवस्था करेंगे, क्योंकि दोनों ने इस बात को चुपचाप मान लिया था कि पिता अपने पुराने मकान में ही अकेले रहते रहेंगे, पर अब उसने तुरंत ही यह पक्का निश्चय कर लिया कि वह अपने पिता को भी अपने नये

मकान में अपने साथ ले जायेगा. ध्यान से सोचने पर उसे यही लगा कि वहां अपने पिता का खयाल रखने के लिए वह जो कुछ भी करना चाहता है, कहीं उसमें बहुत देर न हो जाये.

वह अपने पिता को बांहों का सहारा देकर बिस्तर पर ले आया. उसे यह देखकर बहुत डर-सा लगा कि जब वह अपने पिता को सहारा देकर बिस्तर की तरफ बढ़ रहा था, तो उसके सीने पर टिके उसके पिता उसकी घड़ी की चेन से खेल रहे थे. वह एक पल को तो उन्हें बिस्तर पर ही न लिटा सका, क्योंकि उन्होंने जंजीर कसकर पकड़ ली थी.

पर उन्हें बिस्तर पर लिटाते ही सब ठीक-ठाक लगने लगा. उन्होंने अपने आपको ढंक लिया. यहां तक कि उन्होंने कंबल कंधों से भी ऊपर तक कर लिया और जार्ज की तरफ अजनबी की-सी दृष्टि से देखा.

▣

"क्या आपको मेरे दोस्त के बारे में कुछ याद आ रहा है? अभी भी याद नहीं आया?" उनसे हां की उम्मीद करते हुए जार्ज ने उत्साहित होकर सिर हिलाते हुए पूछा.

"मैंने अपने आपको अच्छी तरह ढंक लिया है न?" उसके पिता ने एक बार फिर पूछा, मानों वे यह न देख पा रहे हों कि उनके पैर ढंके हुए हैं या नहीं.

"बिस्तर में वह बिल्कुल ठीक हैं." जार्ज ने उनके चारों ओर कंबल अच्छी तरह लपेटते हुए कहा.

"क्या मैं अच्छी तरह ढंका हुआ हूं?" उसके पिता ने एक बार फिर पूछा. उत्तर के लिए मानों वे फिर कुछ और सुनने की उम्मीद कर रहे हों.

"चिंता मत कीजिए, आप अच्छी तरह ढंके हुए हैं."

"नहीं!" वे उसकी बात काटते हुए चिल्लाये. उन्होंने पूरी शक्ति से कंबल अलग फेंक दिया और एकदम उछलकर खड़े हो गये. अपने आपको सीधा खड़ा करने के लिए उन्होंने एक हाथ से दीवार का सहारा ले लिया था.

▣

"तुम मुझे ढंकना चाहते थे! मैं जानता हूं, मेरे नौजवान बेटे! पर अभी मुझे ढंकने में तुम्हें बहुत समय लगेगा. और अगर यह मेरी अंतिम शक्ति ही क्यों न हो, फिर भी तुम्हारे लिए काफी है, तुम्हारे लिए बहुत ज्यादा है. दरअसल मैं तुम्हारे दोस्त को जानता हूं. वह मेरे अपने जिगर के बाद मेरा बेटा हो सकता था. यही वजह है कि तुम इतने सालों से उसे धोखा देते रहे. और नहीं तो क्यों, तुम क्या सोचते हो, मुझे इसके लिए अफसोस नहीं है? और इसीलिए तुमने अपने आपको अपने ऑफिस में बंदकर लिया है? साहब व्यस्त हैं, उन्हें डिस्टर्ब न किया जाये? ताकि, ताकि तुम आराम से रूस चिट्ठियां भेज सको. पर खुदा का शुक्र है कि एक पिता को यह पढ़ने की जरूरत नहीं पड़ती कि वह अपने लड़के पर कैसे निगाह रखे. और अब तुमने सोचा कि तुम उसे अपने नीचे कर ही लोगे. इतना नीचे कि उस पर अपने चूतड़ टिका सको, ताकि उस पर बैठ सको, ताकि वह बिल्कुल हिल-डुल ही न सके, और तब मेरे सुपुत्र महाशय शादी करने का इरादा कर लेते हैं!"

जार्ज ने अपने पिता के इस कठोर रूप को घूरा. सेंट पीटर्सबर्ग में उसके मित्र की कल्पना ने, जिसे उसके पिता अचानक ही इतनी अच्छी तरह जान गये थे, बुरी तरह आहत कर दिया. जार्ज ने रूस की विशालता में उसे खोया हुआ देखा. एक खाली उजाड़ गोदाम के दरवाजे पर उसने अपने उस मित्र को देखा. शो केसों के कबाड़, पिचके हुए सामान के ढेर और गिरे हुए गैस के पाइप. इनके बीच खड़ा हुआ उसका मित्र. उसे आखिर इतनी दूर क्यों जाना पड़ा!

"ऐ, मेरी तरफ ध्यान दो," उसके पिता गरजे. जार्ज, जो बिल्कुल किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा था, एकदम पिता को सहारा देकर उन्हें आराम से बिठाने के लिए लपका, पर उसे बीच में ही रुक जाना पड़ा.

"क्योंकि उस बदजात लड़की ने अपना स्कर्ट ऊपर उठा दिया था," उसके पिता के मुंह से सीटियां-सी बजने लगीं, "क्योंकि उसने अपना स्कर्ट इस तरह ऊपर उठा दिया था... साली, बेहया". और उसकी नकल करते हुए उन्होंने अपनी कमीज इतनी ऊपर उठा ली कि लड़ाई के वक्त जांघ पर लगे जख्मों के निशान भी नजर आने लगे. "क्योंकि उसने अपना स्कर्ट इस तरह उठा दिया था. फिर तुमने भी उसके लिए यही किया! और उसके साथ यह सब कुछ बेरोक-टोक करने के लिए तुमने अपनी मां की यादों की भी परवाह नहीं की है, अपने दोस्त को धोखा दिया है और अपने पिता को बिस्तर पर धकेल दिया है, ताकि वह हिल-डुल न सके! पर वह हिल-डुल सकते हैं. बोलो. . . वह उठ सकते हैं या नहीं."

वे वहां बिना किसी सहारे के खड़े रहे और लातें चलाते रहे. अंतर्दृष्टि से उनका चेहरा दमकने लगा था.

▣

अपने पिता से जितनी दूर संभव हो सका, जार्ज एक कोने में सकुचाया खड़ा रहा. अरसा पहले उसने पक्का निश्चय किया था कि वह छोटी से छोटी क्रिया पर भी कड़ी निगाह रखेगा, ताकि अगर धोखे में कोई उसपर झपटे या उसपर सामने या पीछे से हमला करे, तो वह देखता ही न रह जाये. इस समय उसे वह भूली हुई तरकीब याद आयी, पर वह उसे फिर भूल गया.

"लेकिन फिर भी तुम्हारे दोस्त के साथ विश्वासघात नहीं हुआ है," उसके पिता ने इस बात पर खास जोर देते हुए कहा, "मैं उसका यहीं से प्रतिनिधित्व करता रहा हूं."

"ओह! मसखरे!" जार्ज कोई तीखा जवाब दिये बिना न रह सका, जब उसे महसूस हुआ कि उसके पिता उसका कितना नुकसान करते रहे हैं. उसकी आंखें अपने पिता के सिर की तरफ देखने लगीं. जीभ काटते हुए वह सोचता रहा, 'कितनी देर हो चुकी है.' दर्द से वह अपनी हिम्मत खोने लगा.

"हां, मैं सचमुच मसखरापन करता रहा हूं! मसखरापन! बहुत अच्छा शब्द है यह. इस बूढ़े विधुर के पास और बचा ही क्या था आराम के लिए? बोलो...और इस समय तुम मेरी बातों का जवाब दे रहे हो, तुम मेरे जीवित पुत्र ही बने रहो...

बताओ क्या बचा था मेरे पास, अपने अंधेरे कमरे में, मेरे आगे-पीछे होते बेवफा नौकर-चाकर?"

"और मेरे साहबजादे दुनियाभर में अकड़ते फिर रहे हैं. जो कुछ लेन-देन मैंने उनके लिए तैयार किये, सबका भट्ठा बिठा दिया है. और अब विजयी शान से अपने पिता से दूर जा रहे हैं. अब उनका चेहरा एक आदरणीय व्यापारी का हो गया है! तुम क्या सोचते हो, मैं तुम्हें प्यार नहीं कर सकता था, मैं, जिससे तुमने पीठ फिरा ली है?"

'अब वे आगे झुकेंगे,' जार्ज ने सोचा, 'अगर वे अपने आपको लड़खड़ाने दें या गिर जाने दें तो!' ये शब्द उसके दिमाग में सीटियां बजाने लगे.

उसके पिता आगे की तरफ झुके, पर लड़खड़ाये नहीं. चूंकि जार्ज और अधिक नजदीक नहीं आया था, जैसी वे उम्मीद कर रहे थे, वे फिर सीधे खड़े हो गये.

"वहीं खड़े रहो, मेरे पास आने की कोई जरूरत नहीं है. तुम समझते हो, तुम्हारे अंदर इतनी ताकत है कि यहां आ जाओ, और कि तुम अपनी मर्जी के मालिक हो? अपने पर इतना भरोसा मत रखो! मैं अभी भी तुमसे ज्यादा ताकतवर हूं. हो सकता है, मैं अपने-आप ही यह सब छोड़छाड़ दूं, पर तुम्हारी मां ने अपनी इतनी अधिक शक्ति मुझे दे दी थी कि मैंने तुम्हारे दोस्त के साथ बहुत शानदार संबंध कायम कर लिये हैं और तुम्हारे ग्राहक यहां मेरी जेब में भरे पड़े हैं."

▣

'पिताजी की कमीज में भी जेबें बनी हुई हैं.' जार्ज सोचता रहा. उसे लगा कि इस बात को लेकर वे उसका जीना हराम कर सकते हैं! केवल एक क्षण के लिए उसने यह सब कुछ सोचा, फिर उसे सब भूलता चला गया.

"अपनी दुल्हन को अपनी बगल में खड़ा करके फिर मेरी राह में आने की कोशिश तो करो जरा. मैं उसे ऐसा साफ करूंगा कि बस. तुम्हें क्या पता मैं कैसे करूंगा!"

जार्ज ने अविश्वास से मुंह बिचकाया. उसके पिता अपनी बातों की सच्चाई की पुष्टि करते हुए जार्ज की तरफ देखकर सिर हिलाते रहे.

"तुमने मुझे आज कैसे खुश किया है. आकर पूछा कि क्या तुम अपने दोस्त को अपनी सगाई की खुशखबरी भेज सकते हो! वह इस बात को पहले से जानता है बुद्धू, उसे सब पता है. मैं उसे सब कुछ लिखता रहा हूं. पता है क्यों! क्योंकि तुम मुझसे लिखने की चीजें ले जाना भूल गये थे. यही वजह है कि वह सालों से यहां नहीं आया. उसे सारी बातें तुमसे हजार बार ज्यादा अच्छी तरह पता हैं. उसके बायें हाथ में तुम्हारे बिना खुले पत्र होते हैं और अपने दायें हाथ में वह मेरी चिट्ठियां थामे उन्हें पढ़ रहा होता है."

उत्साह से वह अपना हाथ सिर के ऊपर ले जाकर हिलाने लगे.

"उसे सारी बातें तुमसे हजार बार अच्छी तरह पता हैं," वे गरजे.

"दस हजार बार!" जार्ज ने अपने पिता का मजाक उड़ाने के लिए कहा, पर उसके शब्द मुंह के अंदर ही रह गये.

"सालों से मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहा हूं कि तुम कोई ऐसा सवाल लेकर आओ! क्या तुम सोचते हो कि मैं किसी और चीज की परवाह करता हूं! तुम क्या सोचते हो कि मैं अखबार पढ़ता हूं! देखो!" और उन्होंने जार्ज की तरफ एक बहुत पुराना अखबार उछाल दिया जो न जाने उन्हें बिस्तर में कहां से मिल गया था. एक पुराना-सा अखबार जिसका नाम भी कभी जार्ज ने नहीं सुना था.

"तुम्हें बड़ा होने में कितना ज्यादा वक्त लगा है. तुम्हारी मां को मरना था, वह यह खुशी का दिन न देख सकी. तुम्हारा दोस्त रूस में टुकड़ों में बंटा जा रहा है. वह तो तीन साल पहले ही इतना पीला लगने लगा था कि अब किनारे लगा कि तब लगा, और मेरी हालत तो तुम देख ही रहे हो, इसके लिए भगवान ने तुम्हें एक जोड़ी आंखें दी ही हैं!"

"इसीलिए आप मेरे इंतजार में बैठे हुए थे!" जार्ज चिल्लाया.

उसके पिता ने लापरवाही से उस पर दया दिखाते हुए कहा, "मुझे लगता है, तुम यह बात पहले कहना चाहते थे. पर अब इससे कोई फर्क नहीं पड़ता." तब उनकी आवाज ऊंची हो गयी, "तो अब तुम्हें पता चल गया है कि तुम्हारे अलावा भी दुनिया में कुछ है. अब तक तुम्हें सिर्फ अपने बारे में ही पता था! बेचारा भोला, नादान! हां, तुम नादान ही थे, पर अब तुम खूंखार आदमी की तरह हो गये हो! इसलिए ध्यान से सुनो, मैं तुम्हें इसी वक्त डूबकर मरने की सजा देता हूं."

▣

जॉर्ज ने खुद को कमरे से बाहर निकलता महसूस किया. जैसे ही वह बाहर निकला, उसे पिता के नीचे गिरने की आवाज सुनायी दी. सीढ़ियों पर से वह ऐसे लपकता हुआ उतरा, मानो वे ऊंची-नीची बनी हुई हों. वह अपनी नौकरानी से जा टकराया जो सुबह-सुबह सफाई में लगी हुई थी. "हे भगवान!" वह चिल्लायी, और उसने अपना मुंह आंचल से ढंक लिया. पर तब तक वह जा चुका था. सामने के दरवाजे से वह एकदम बाहर की तरफ लपका. सड़क पार करके सीधा पानी तक पहुंच गया. उसने रेलिंग इतनी कसकर पकड़ ली थी, मानों किसी भूख से मरते आदमी के हाथ रोटी लग गयी हो. उसने शानदार जिमनास्ट की तरह अपने आपको रेलिंग के ऊपर उछाला. हां, जवानी में वह शानदार जिमनास्ट हुआ करता था. उसके माता-पिता को उस पर गर्व था. . .ढीली होती जा रही पकड़ से वह अभी भी रेलिंग थामे हुआ था. तभी उसने सामने से एक मोटर साईकिल आती देखी. उसकी आवाज से उसके गिरने की आवाज आसानी से दब जायेगी. उसने धीरे से कहा—"मेरे प्यारे माता-पिता, मैंने हमेशा आपको प्यार किया है, खैर. . . और उसने अपने आपको गिर जाने दिया.

इस समय पुल पर ट्रैफिक का लंबा सिलसिला चल रहा था.

□

● अनुवाद : सूरज प्रकाश

काफ्का के पात्र बहुत कम बोलते हैं

डा. लोठार लुत्से से
कन्हैयालाल नंदन की बातचीत

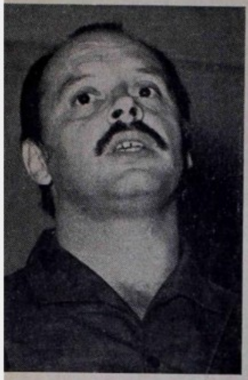

कहा जाता है कि काफ्का की रचनाओं का अनुवाद करना एक कठिन कार्य है. इसलिए जिन्होंने काफ्का को मूल जर्मन में पढ़ा है, काफ्का के बारे में उनकी राय जानना रुचिकर ही होगा. डा. लुत्से 'ईस्ट एशिया इंस्टीच्यूट' के तत्वावधान में हाईडलबर्ग यूनिवर्सिटी के प्रतिनिधि के रूप में भारतीय परिवेश में भी रच-बस चुके हैं. प्रस्तुत बातचीत एक जर्मन रचनाकार को हिंदी और जर्मन दोनों के जानकार पाठक की नजर से जानने, परखने की कोशिश है, जो काफ्का के पाठकीय और साहित्यिक महत्व को भी रेखांकित करती है.

पैदाइश से देखें तो काफ्का चेक था, लेखन से देखें तो काफ्का जर्मन था. एक जर्मन नागरिक और जर्मन साहित्य के प्रबुद्ध पाठक के नाते आपसे जानना चाहता हूं कि राष्ट्रीयता और भाषा का यह अंतर जर्मनी में काफ्का के आकलन में क्या भूमिका अदा करता रहा है?

मैं इस भेद से सहमत नहीं हूं. जब मैं किसी लेखक की बात करता हूं तो उसको राष्ट्रीयता या भाषा की दीवारों में बांधकर नहीं देखता. और मेरा विश्वास है कि मेरी इस बात में बहुत सारे जर्मन दोस्तों और पाठकों की बात जुड़ी हुई है. मैं उसे जर्मन नागरिक के रूप में कभी न देखकर इस रूप में देखता हूं कि वह एक योरोपीय लेखक था, जिसने अपनी अभिव्यक्ति के लिए जर्मन भाषा को चुना.

लेकिन तथ्य तो यह है कि अपने आकलन में काफ्का को चेक और जर्मन दोनों की अवहेलना का भोग भोगना पड़ा है.

चेक साहित्य की दृश्यावली से परिचित नहीं हूं, जानता नहीं हूं; इसलिए उसके बारे में कुछ कहना उचित नहीं है. हां, इतना जरूर जानता हूं कि काफी निकट अतीत तक मार्क्सवादी आलोचकों को काफ्का से परेशानी थी. लेकिन अभी मेरे हाथ एक स्पेनिश मार्क्सवादी आलोचक (जो स्पेन में 1915 में पैदा हुआ था और जहां तक मेरा अनुमान है उसने रिपब्लिकनों की ओर से ही लड़ाई में हिस्सा लिया होगा और तब से वह मेक्सिको में रहा तथा सौंदर्यशास्त्र और समसामयिक दर्शन शास्त्र का अध्यापक है) की किताब हाथ लगी, जिसने कट्टरतावादी दृष्टिकोण के विपरीत एक अध्याय 'काफ्का का एक नया नायक जोसेफ के'. शीर्षक से जोड़ा है. और आप जानते हैं कि काफ्का ने अपने लेखन में 'के' का इस्तेमाल बहुधा खुद के लिए किया है. उसने काफ्का के रचित संसार को 'काफ्का-एस्क' (काफ्काई कह लीजिए) की संज्ञा दी है. दांते के बाद शायद पहली बार काफ्का को इस 'विशेषता' का सम्मान दिया गया है. एक व्यक्ति के नाते न्याय-व्यवस्था की मशीनरी में फंस जाने पर (जैसा कि 'ट्रायल' में है) या प्रशासन की मशीनरी में (जैसा कि 'कासल' में है) फंस जाने के बाद आप बच नहीं सकते. आप घुटते रहेंगे, लेकिन नजात नहीं पा सकते. छटपटा सकते हैं, निकल नहीं सकते. रास्ते बंद हैं. जर्मन में इसके लिए एक शब्द है—'आउस वेग लो जिखाइटह.'

'बंद दरवाजे' या विकल्पहीनता? यह अस्तित्ववादी दर्शन की अनिवार्य परिणति है और काफ्का इस अनुभूति में अकेला नहीं है डा. लुत्से!

लेकिन शायद काफ्का उस अनुभूति का सबसे प्रामाणिक प्रतिनिधि है. और रही भाषा की बात, तो जर्मन भाषा का आदमी हूं, मैं समझता हूं कि हिंदी में जो अनुवाद काफ्का के हुए हैं, वे अधिकतर अंग्रेजी से हुए होंगे. लेकिन जर्मन में पढ़ने पर ऐसा लगता है कि उसके 'काफ्काई संसार' का असली आतंक उसकी भाषा में है—प्रशासन की जर्मन, अदालतों की जर्मन, दफ्तरों की जर्मन. . .उस मशीनरी की ध्वनि उस भाषा से मिलती है.

लेकिन किसी भी जीवंत लेखन में परिवेश को प्रामाणिकता उसकी भाषा ही देती है. रेणु की भाषा ही तो है, जो उनके परिवेश को प्रामाणिक बनाकर पेश करती है. नहीं ?

हां, रेणु ने भी भाषा के उस धरातल का उद्घाटन किया है, लेकिन काफ्का ने उस भाषा का इस्तेमाल इस ढंग से किया है कि वह उस युग की प्रतिनिधि बन सके. मजा यह है कि उसके पात्र बहुत कम बोलते हैं, काफ्का अपने पात्र को फेंककर चुप हो जाता है. उसको जोसेफ की दुनिया में फेंक दिया जाता है और काफ्का उसे फेंक कर मौन रहता है. . .लेकिन शायद आप ठीक कहते हैं कि काफ्का को समय रहते उसकी जन्मभूमि में नहीं पहचाना जा सका. अब शायद यह स्थिति नहीं है. हां, नहीं है.

आज की जर्मन सोसायटी के लिए काफ्का कितना सार्थक और प्रासंगिक है?

इस तरह से देखना मेरे विचार में काफ्का को छोटा करना है. मैं जर्मन भाषा में लिखने वाले कवियों और लेखकों में इस भाषा को बोलने और समझने वालों के लिए काफ्का और ब्रेख्त को बहुत महत्त्वपूर्ण उपहार मानता हूं, इस पूरी शताब्दी में. और मैं यह पूरी तरह सावधानी बरतकर कह रहा हूं.

इससे न मेरा अभिप्राय खंडित होता है, न आपका. प्रश्न अपनी जगह है.

प्रासंगिकता का? आज की जर्मन सोसायटी में?

जी हां.

आज की जर्मन सोसायटी में. . .काफ्का ने जिस व्यक्ति को लिया है, वह सोसायटी का ही अंग है और उसका शिकार भी है. असल में काफ्का अपने दृष्टिकोण के कारण लोकप्रिय नहीं हो सका, क्योंकि काफ्का को पढ़ना एक तकलीफ से गुजरना है और यह एक तरह की आत्म-यातना है. इस तकलीफ से कम लोग गुजरना चाहते हैं. इसलिए यह तो पूछिएगा ही नहीं कि आज कितने लोग उसे पढ़ते हैं जर्मनी में.

बिना पूछे पता लग सके तो और अच्छा है.

बात को समझने के लिए आप टॉमस मॉन से तुलना करें. जिन्हें मैं बड़े आदर से पढ़ता हूं. मॉन 1955 में मरे थे और मेरे तईं मॉन को पढ़ना पूरी शताब्दी के पढ़ने जैसी सार्थकता देता है, यद्यपि मॉन का देहांत शताब्दी के द्वितीयार्द्ध की शुरूआत में ही हो गया. टॉमस मॉन को हम आगे के लेखन में जिंदा नहीं रख पाये. कुछ लोगों ने मॉन की शैली अपनानी चाही, लेकिन उसका नतीजा 'पैरोडी' होकर रह गया. काफ्का 1924 में मर गया था, लेकिन मुझ जैसे जर्मन पाठक के लिए वह पूरी शताब्दी का लेखक है, पूर्वार्द्ध का ही नहीं, अब तो शताब्दी बीतने को आयी, अब तक का दुनिया की किसी भी भाषा में लिखा गया कोई उपन्यास काफ्का के लेखन से बचकर अछूता नहीं जा सकता. इतने से ही काफ्का की अहमियत या प्रासंगिकता प्रकट हो जाती है. असल में जब हम 'काफ्काई संसार' जैसे शब्द का इस्तेमाल करते हैं तो एक प्रभाव को बताते हुए आदर तो देते ही हैं, यह भी कहते हैं कि काफ्का ने अपना एक अलग संसार बनाया है, वास्तव की दुनिया से अलग. और उसकी यह दुनिया ही उसे हमेशा जिंदा रखेगी.

आपने सबसे पहले काफ्का को कब पढ़ा था?

मैंने सबसे पहले काफ्का को दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद पढ़ा था, क्योंकि तभी काफ्का अपने दोस्त मॉक्स ब्रॉड की कृपा से प्रकाश में आया था. अगर मॉक्स ब्रॉड ने काफ्का की वसीयत की उपेक्षा करके उसकी रचनाएं प्रकाशित न करायी होतीं तो हम काफ्का को जान ही न पाते. उस समय मैं बीसा पार करके तीसे के पेट में आया ही था. आयु भी कोई ज्यादा नहीं थी.

कैसा अनुभव हुआ था?

वैसा ही जैसा आज पढ़ने पर अनुभव होता है. एक भयंकर यातना से होकर गुजरना.

क्या पढ़ा था?

'अमेरिका' आज भी पढ़ता हूं तो उसका 'अमेरिका' हमारे समय का प्रतीक बन जाता है. हम योरोपियनों के लिए और आप भारतीयों के लिए भी, 'अमेरिका' एक बहुत बड़े काव्यात्मक रूपक में बदल जाता है, उस दिशा में, जिसकी तरफ हम सब बढ़ रहे हैं और जिससे हम बच नहीं सकते.

आप काफ्का के अलावा किसी और जर्मन लेखक को भी भारतीय संदर्भों में देखते हैं ?

प्राहा : काफ्का के घर की गली का रास्ता

जी हां, ब्रेख्त . . .मुझे लगता है कि आज ये दोनों. . .काफ्का और ब्रेख्त—ऊंचे पैराये के जर्मन रचनाकार योरोप के लिए अधिक प्रासंगिक और सार्थक हों, न हों, जहां कि वे पैदा हुए हैं, जितना योरोपेतर दुनिया के लिए हो गये हैं. और काफ्का के बारे में उतना विश्वास-पूर्वक मैं शायद न कहूं, जितना ब्रेख्त के लिए कहना चाहता हूं. ब्रेख्त को जब पूर्वी बर्लिन में देखता हूं तो लगता है, क्लासिक हो गया. बड़े आराम से हम उसे 'कालजयी' के घेरे में ले जा सकते हैं. भारत में तो ब्रेख्त और भी अधिक जीवंत लगता है. हबीब तनवीर या नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा का ब्रेख्त अपनी पैदाइश की जमीन से ज्यादा यहां प्रासंगिक लगता है. शायद काफ्का वह सामग्री नहीं देता कि उसे क्लासिक बनाकर रख दिया जाये. वह महान रहेगा, क्लासिक नहीं हो सकता. उसका कारण शायद और कुछ नहीं, उसके पढ़ने में बड़ी यातना से गुजरना पड़ता है. कौन चाहेगा उससे गुजरना!

तो क्या लोग इस यातना के डर से ही काफ्का को नहीं पढ़ना चाहते?

शायद.

इससे काफ्का को क्या फर्क पड़ेगा?

यही कि वह क्लासिक नहीं बन सकता, क्योंकि क्लासिक को पूरी तरह लोकप्रिय भी होना चाहिए. ब्रेख्त आज यहां की संस्कृति व समाज के लिए प्रासंगिक भी है, अर्थवान भी. हो सकता है, कल बदल जाये. . .लेकिन अभी है. ऐसा मैं देख रहा हूं. □

काफ्का की कहानियां : तीन

डागदर बाबू

मुझे हमेशा चीजें बर्दाश्त करनी पड़ी हैं. एक अदद उम्दा घाव, बस यही कुछ लाया था दुनिया में! और यही मेरी स्थायी निधि है.

मैं बेहद असमंजस में था. मुझे एक जरूरी सफर पर रवाना होना था. दस मील दूर के एक गांव में, एक सख्त बीमार मरीज मेरी प्रतीक्षा कर रहा था. मेरे और उसके बीच फैले विस्तृत अंतरालों को एक तेज बर्फानी तूफान ने भर दिया था. मेरे पास एक टमटम थी—बड़े-बड़े पहियों वाली हल्की टमटम. हमारी देहाती सड़कों के लिए उपयुक्त रोएंदार वस्त्रों में लिपटा, हाथ में औजारों का बैग लिये, सफर के लिए तैयार हो मैं आंगन में आ चुका था, मगर टमटम में जोतने के लिए कोई घोड़ा उपलब्ध नहीं था, एक भी नहीं. इस बर्फीले शिशिर की थकान से जर्जर मेरा घोड़ा पिछली रात मर चुका था. किसी और का घोड़ा मांगने की खातिर मेरी नौकरानी गांव भर में दौड़-धूप कर रही थी. स्थिति निराशाजनक थी—मैं जानता था और खड़ा था—असहाय! परत-दर-परत मुझपर घनी होती जा रही बर्फ कहीं जाने के लिए मुझे और ज्यादा असमर्थ बनाती जा रही थी. इतने में फाटक पर लड़की दिखाई दी, अकेली. उसने लालटेन हिलायी, यों भी, ऐसी यात्रा के लिए उस वक्त भला कौन अपना घोड़ा देता! मैंने आंगन का एक और चक्कर लगाया, कोई हल मुझे नहीं सूझा. उधेड़-बुन में व्यग्र हो मैंने साल भर से गैर-आबाद सुअरबाड़े के जीर्ण द्वार पर ठोकर मारी. दरवाजा झटके से खुला और कब्जों पर झूलने लगा. घोड़ों की-सी चाप और गंध बाड़े में से बाहर निकली. भीतर रस्सी से एक मद्धिम लालटेन झूल रही थी. उस तंग जगह में उकड़ूं बैठे एक व्यक्ति ने अपना नीली आंखों वाला निष्कपट चेहरा मेरी ओर घुमाया, "क्यों, क्या मैं टमटम में घोड़े जोतूं?" रेंगकर बाहर आते हुए उसने पूछा. मुझे जवाब नहीं सूझा. सुअरबाड़े में और क्या था. सिर्फ यह देखने के लिए मैं थोड़ा-सा झुका. नौकरानी मेरी बगल में खड़ी थी, "तुम अपने ही घर में कब क्या चीज ढूंढ़ निकालोगे, तुम्हें कभी मालूम नहीं होता," वह बोली और हम दोनों हंस पड़े. "अरे भाई! ओ बहन जी!" साईस ने पुकारा और दो घोड़े,

पुष्ट पार्श्व वाले विशाल जंतु, उनकी टांगें उसके जिस्म से सटी हुई, हर सुडौल सिर, ऊंट के लसर की मानिंद नीचे की ओर झुका—एक के बाद एक, द्वार-छिद्र में भिंचे अपने जिस्म सिकोड़; मात्र कूल्हों का जोर लगा, झटके से बाहर निकल आये. अगले ही क्षण वे खड़े थे. उनकी टांगें लंबी थीं और उनके जिस्मों से भाप निकल रही थी.

"इसकी मदद करो," मैंने आदेश दिया और सहयोगशील लड़की घोड़े जोतने के काम में साईस की मदद को दौड़ पड़ी. अभी वह उसकी बगल में पहुंची ही थी कि साईस ने उसे दबोच लिया और अपना चेहरा उसके चेहरे पर रखकर दबा दिया. वह चीखी और भागकर मेरे पास लौट आयी. उसके गाल पर दांतों की दो पंक्तियों के लाल निशान उभर आये थे. "दरिंदे!" मैं क्रोध से चीखा, "क्या तुम्हें कोड़े लगाये जायें!" मगर उसी क्षण फिर खयाल आया कि साईस आखिर एक अजनबी था; वह कहां से आया था, मैं नहीं जानता था और जब अन्य सभी लोग मुझे अंगूठा दिखा चुके थे, वह अपनी मर्जी से मेरी मदद कर रहा था. वह मेरे खयालों से मानो परिचित था. उसने मेरी धमकी का बुरा नहीं माना. बल्कि घोड़ों के साथ काम में लगा रहा और सिर्फ एक बार मेरी तरफ मुड़ा. इसके बाद वह बोला, "आइए, बैठिए" गाड़ी वाकई तैयार खड़ी थी. घोड़े की एक शानदार जोड़ी, मैंने गौर किया, इतने शानदार घोड़े के पीछे, मैं गाड़ी में पहले कभी नहीं बैठा था. मैं खुशी से टमटम में दाखिल हुआ. "मगर गाड़ी मैं हांकूंगा, तुम्हें रास्ता मालूम नहीं," मैंने कहा, "अवश्य." उसने जवाब दिया, "मैं आपके साथ जा भी नहीं रहा, मैं यहीं ठहरूंगा रोज के संग." "नहीं." रोज चीखी और जो उसकी नियति प्रतीत होती थी, उस अमंगल के औचित्यसिद्ध आभास से घर के अंदर भाग गयी. मैंने, जब वह सांकल चढ़ा रही थी, उसकी खड़खड़ाहट सुनी. मैंने चाभी को ताले में घूमते हुए सुना और इसके अंतिरिक्त मैं देख सकता था, उसने किस तरह बुझा दी थी प्रवेश कक्ष की बत्तियां और फिर उसके बाद के तमाम जीनों और कमरों की भी, स्वयं को ढूंढ़ ली जाने के खतरे से बचाने की खातिर. "तुम मेरे साथ आ रहे हो," मैंने साईस से कहा, "अन्यथा मैं नहीं जाऊंगा, हालांकि सफर बहुत जरूरी है. लड़की तुम्हें सौंपकर मैं उसकी कीमत चुकाने की बाबत नहीं सोच रहा हूं."

"हुर्र. .र. .र. .हुर्र!" वह बोला, उसने ताली बजायी, टमटम बाढ़ में बहते लट्ठे की मानिंद वेग से दौड़ चली. मैं अपने घर के दरवाजे को, ज्योंही साईस उसपर झपटा, चिरते-फटते सुन भर सका. इसके बाद एक तूफानी बहाव, जिसने मेरी तमाम इंद्रियां सुन्न कर दी थीं, मुझे अंधा और बहरा कर दिया, किंतु यह सब कुछ मात्र क्षणिक था, क्योंकि मैं अपने मरीज के फार्म, जिसका अहाता मानो मेरे घर के सामने प्रकट हो गया था, पर पहुंच चुका था. घोड़े चुपचाप थम गये थे. तूफान रुक चुका था. चारों तरफ चांदनी फैली थी. मेरे मरीज के मां-बाप फुर्ती से घर से बाहर निकले, उनके पीछे उसकी बहन. गाड़ी में से मुझे लगभग उठा लिया गया. उनके अस्पष्ट उद्गारों का मैं कोई अर्थ नहीं लगा सका. रोगी-कक्ष की हवा में सांस लेना दूभर था—लगभग असंभव . उपेक्षित स्टोव धुआं दे रहा था. मैं खिड़की ठेलकर खोलना चाहता था, लेकिन पहले मुझे मरीज को देखना पड़ा. गठिया, बुखार-विहीन, न ठंडा, न गरम, सूनी आंखोंवाले, कमीजविहीन युवक ने चिड़ी-चिड़ी हुए कंबल के नीचे से अपना धड़ ऊपर उठाया. मेरी गर्दन के गिर्द अपनी बाहें डालीं और मेरे कानों में फुसफुसाया, "डॉक्टर, मुझे मर जाने दो." मैंने कमरे में चारों ओर नजर डाली. किसी ने नहीं सुना. माता-पिता चुप थे, आगे की ओर झुके, मेरे निर्णय की प्रतीक्षा करते हुए. बहन ने मेरे हैंड-बैग के लिए एक कुर्सी रख दी थी. मैंने बैग खोला और अपने आलों की तलाश करने लगा, अपनी विनती याद दिलाने के लिए युवक मुझे जकड़े रहा. मैंने एक छोटी चिमटी उठायी, मोमबत्ती की रोशनी में उसे परखा और फिर नीचे रख दिया. मन ही मन ईश्वर को कोसते हुए मैंने सोचा—इस तरह के मामलों में देवता भी सहायक होते हैं, लापता घोड़े को लौटा देते हैं, काम के महत्व को देखते हुए एक और घोड़ा उसमें जोड़ देते हैं और कहीं कोई कमी न रह जाये, साईस भी जुटा देते हैं—और तभी मुझे रोज फिर याद आयी. मुझे क्या करना था? मैं उसे कैसे बचा सकता था? दस मील दूर से मैं उसे साईस के नीचे से कैसे खींच सकता था—इन हालात में जबकि घोड़ों पर मेरा नियंत्रण भी न था. ये घोड़े! अब तक किसी तरह खिसकाकर लगामें ढीली कर चुके थे, बाहर से ठेलकर खिड़कियां खोल चुके थे—कैसे, मुझे मालूम नहीं था? दोनों में से प्रत्येक ने खिड़की में अपना सिर फंसाया हुआ था और परिवार की चौंकाने वाली चीखों से अप्रभावित, मरीज पर नजर जमाये खड़े थे.

यहां से फौरन चल देना चाहिए—मैंने सोचा, मानो घोड़े मुझे वापसी के लिए बुला रहे थे, इसके बावजूद मैंने मरीज की बहन को उससे अपना रोएंदार कोट ले लेने की अनुमति दे दी. मेरे लिए गिलास भर रम डाली गयी, बूढ़े ने मेरा कंधा थपथपाया, इस बेकतल्लुफी का औचित्य उसके खजाने की यह भेंट प्रमाणित करती थी. मैंने सिर हिलाया. बूढ़े व्यक्ति के खयालों के संकीर्ण दायरों में मैंने स्वयं को बीमार महसूस किया, मेरे शराब न पीने का संभवतः यही कारण था. मां पलंग के पास खड़ी थी और खुशामदी स्वर में उसकी तरफ जाने का मुझसे आग्रह किया. मैं मान गया और यद्यपि एक घोड़ा छत की तरफ हिनहिना रहा था, मैंने अपना सिर युवक की छाती पर रख दिया. मेरी गीली दाढ़ी के नीचे युवक का वक्ष कांप उठा. मैंने, जो मैं पहले ही से जानता था, उस तथ्य की पुष्टि की. युवक बिल्कुल स्वस्थ था. जरा-सी खराबी, उसकी विनम्र मां द्वारा कॉफी से संतृप्त कर दिये गये रक्त-परिसंचरण में थी. वह एक झटके से बिस्तर से उठ सकता था. मैं कोई समाज सुधारक नहीं, अतः उसे मैंने पड़ा रहने दिया. मैं जिले के स्तर का डॉक्टर था, डागदर बाबू; और अपने फर्ज को चरम सीमा तक निभाता था, बल्कि उस हद तक जहां पहुंचकर वह करीब-करीब अति हो जाता था. मुझे बहुत कम तनख्वाह मिलती थी, लेकिन फिर भी गरीबों के प्रति मैं उदार और सहायक था. मुझे अभी यह भी देखना था कि रोज सकुशल थी या नहीं; और फिर युवक अगर चाहता तो अपनी बात मनवा सकता था और मैं भी मर सकता था. उस अंतहीन शिशिर में मैं वहां क्या कर रहा था? मेरा घोड़ा मर चुका था और गांव में किसी एक भी व्यक्ति ने मुझे दूसरा घोड़ा नहीं दिया. सुअरबाड़े में से मुझे अपनी जोड़ी बाहर निकालनी पड़ी. अगर संयोगवश ये घोड़े न होते तो मुझे सुअरों के साथ सफर तै करना पड़ता. कुछ इस तरह घटा था यह हादसा! मरीज के परिवार से विदा लेने के अंदाज में मैंने सिर हिलाया. वे इसकी बाबत कुछ नहीं जानते थे और अगर जानते तो वे इस पर विश्वास नहीं करते. नुस्खे लिखना बहुत आसान है, मगर लोगों से किसी मुद्दे पर सहमत होना कठिन है. खैर, मेरी इस मुलाकात को अब समाप्त हो जाना चाहिए. एक बार फिर मुझे व्यर्थ ही बुला लिया गया. मैं इसका आदी था. सारे जिले के लोगों ने, रात को बजायी जाने वाली घंटी के जरिये मेरी जिंदगी, यातना बना दी थी, मगर इस बार तो मुझे रोज की भी बलि देनी होगी—उस खूबसूरत लड़की की, जो बरसों से मेरे घर में रह रही थी और मुझे इसका एहसास नहीं के बराबर ही था—यह बलिदान इतना बड़ा था कि मांगा नहीं जा सकता था और फिर जिसे भी मैं जुटा सकता था, उस कौशल से मुझे किसी तरह इसे अपने मस्तिष्क में तर्क की कसौटी पर भी खरा सिद्ध करना था, ताकि मैं इस परिवार पर न चढ़ दौड़ूं, जो दुनिया में उपलब्ध श्रेष्ठतम संकल्प के बल पर भी मुझे रोज को नहीं लौटा सकता था.

परंतु मेरे बैग बंद करने और कोट के लिए हाथ फैलाने के दौरान साथ-साथ खड़े परिवार के सदस्य, हाथ में थामे रम के गिलास को सूंघता पिता, मुझसे प्रत्यक्षः निराश (आखिर क्यों, लोग मुझसे क्या अपेक्षा रखते हैं) होंठ काटती, आंखों में आंसू लिये मां; रक्तरंजित फहराती बहन, मैं किसी तरह, बतौर प्रतिबंध, तैयार हो चुका था यह मानने के लिए कि युवक संभवतः आखिर बीमार था ही. मैं मरीज की तरफ गया. उसने मुस्कराकर मेरा स्वागत किया, मानो मैं उसके लिए सबसे ज्यादा पौष्टिक, मगर बेस्वाद शोरवा ला रहा था—ओह, मगर अब दोनों घोड़े एक साथ हिनहिना रहे थे! शोर, मेरे खयाल से, मरीज की जांच में मेरी सहायता के लिए दिया गया कोई दैवी आदेश था—और अबकी बार मैंने जान लिया कि युवक वाकई बीमार था. उसकी दायीं बगल में कूल्हे के पास मेरी हथेली जितना बड़ा एक खुला घाव था, गुलाब-सा लाल; रंगत की कई विभिन्नताओं में; अंदर की ओर गहरा और किनारों पर हल्का; कुछ-कुछ दानेदार; खून के अनियमित धब्बों से युक्त, धूप की ओर खुले उथले गढ़े-सा—दूर से वह कुछ ऐसा दीखता था, मगर सूक्ष्म निरीक्षण करने पर मुझे एक और पेचीदगी का पता चला. विस्मय से मैं सीटी बजाये बिना न रह सका. मेरी कनिष्ठा के बराबर मोटे और लंबे, गुलाब की मानिंद लाल और खून के धब्बों से युक्त कीड़े, जख्म के भीतरी भाग से रोशनी की ओर; छोटे-छोटे सफेद सिर और असंख्य छोटी-छोटी टांगों सहित हड़बड़ाहट में कुलबुलाते हुए रेंग रहे थे.

बेचारा युवक ! मदद की संभावना की हदें वह पार कर चुका था. मैंने उसका जानलेवा जख्म ढूंढ़ लिया था. उसकी बगल का यह बौर उसे नष्ट कर रहा था. उसका परिवार खुश हो उठा. उन्होंने मुझे काम में जुटते देखा. बहन ने मां को बताया, मां ने पिता को और पिता ने उन तमाम मेहमानों को, जो बाहें पसारकर संतुलन बनाए रखते हुए , पंजों के बल चलते हुए खुले दरवाजे से, चांदनी में से भीतर आ रहे थे. क्या तुम मुझे बचा लोगे—जख्म के भीतर की रोशनी से चौंधियाया हुआ युवक सुबकते हुए फुसफुसाया. मेरे जिले में कुछ इस किस्म के लोग रहते हैं, जो डॉक्टर से हमेशा असंभव की उम्मीद रखते हैं. ये लोग अपनी पुरानी धारणाएं खो चुके हैं; पादरी घर में बैठता है और एक-एक कर अपने वस्त्रों की सलवटें सुलझाता है, मगर दयालु शल्यचिकित्सक के हाथ वाला डॉक्टर सर्वशक्तिमान माना जाता है. चलो, अगर इसी में इनकी खुशी है तो यही सही. मैंने इन पर अपनी सेवाएं नहीं थोपीं. अगर किसी पवित्र ध्येय के लिए ये मेरा दुरुपयोग करते हैं तो मैं इन्हें करने दूंगा; इससे बेहतर मैं और क्या कर सकता हूं—मैं, बूढ़ा देहाती डॉक्टर जो ठहरा; अपनी नौकरानी से वंचित. और फिर आये परिवारजन, गांव के बुजुर्ग लोग और देखते ही देखते उन्होंने मुझे निर्वस्त्र कर डाला. एक अध्यापक के नेतृत्व में मकान के सामने खड़े हो एक स्कूली गायक मंडली बेहद आसान धुन में गाने लगी.

इसे निर्वस्त्र कर दो
तब यह हमें रोगमुक्त करेगा.
और यदि यह नहीं करता तो इसे जान से मार दो.
सिर्फ एक शल्यचिकित्सक. . .सिर्फ एक शल्यचिकित्सक.

तब तक मेरे कपड़े उतर चुके थे. मैंने शांतिपूर्वक उन्हें देखा. मेरी उंगलियां दाढ़ी में उलझी हुई थीं और मेरा सिर एक ओर झुका हुआ था. मैं बिल्कुल प्रकृतिस्थ था. स्थिति के अनुरूप और वैसा ही बना रहा. आखिरकार मुझे कोई मदद मिलने वाली नहीं थी, क्योंकि अब तक वे मुझे सिर और पैरों से पकड़ चुके थे. फिर वे मुझे बिस्तर तक ले गये और दीवार के साथ जख्म की तरफ लिटा दिया. फिर वे सभी कमरे से बाहर चले गये, दरवाजा बंद किया जा चुका था; गाना बंद हो गया; चांद को बादलों ने ढक लिया; बिस्तर मेरे गिर्द गर्म था! खुली खिड़कियों में घोड़ों के सिर परछाइयों की तरह लहरा रहे थे, "क्या तुम जानते हो," एक आवाज ने मेरे कानों में कहा, "तुमपर मुझे बहुत कम विश्वास है. सिर्फ तुम्हें ही यहां क्यों उड़ा लाया गया? तुम अपने पैरों चलकर तो यहां नहीं आये! मेरी सहायता करने की बजाय तुम मुझे मृत्यु-शैया में ठूंस रहे हो. मैं भरसक तुम्हारी आंखें नोंचकर निकालना चाहूंगा."

"तुम ठीक कहते हो," मैंने जवाब दिया, "यह शर्म की बात है और फिर भी मैं डॉक्टर हूं. मुझे क्या करना है—विश्वास करो, यह निर्णय लेना मेरे लिए भी कोई इतना आसान नहीं."

"क्या तुम मुझसे अपनी इस क्षमायाचना से संतुष्ट हो जाने की आशा करते हो? हां, मुझे संतुष्ट होना ही चाहिए. मैं कुछ कर भी नहीं सकता. मुझे हमेशा चीजें बर्दाश्त करनी पड़ी हैं. एक अदद उम्दा घाव, बस, यही कुछ लाया था मैं दुनिया में! और यही मेरी स्थायी निधि है."

"मेरे नौजवान दोस्त," मैंने कहा, "तुम्हारी गलती है तुम्हारी दृष्टि के दायरे का विस्तृत न होना. मैं लगभग सभी दूर-दराज के भी, रोगी-कक्ष को देख चुका हूं और मैं तुम्हें बता दूं, कुल्हाड़ी के दो प्रहारों से बनाया गया तुम्हारा घाव इतना नुकसानदायक नहीं है. कई लोग ऐसे भी हैं, जो अपना पार्श्व अर्पित कर देते हैं और जंगल में कुल्हाड़ी की आवाज मुश्किल से ही सुन पाते

फ्रैंज काफ्का के कृतित्व में आशा और ऐब्सर्ड

▣ अल्बेयर कामू

वस्तुतः यह दुनिया उतनी सरल नहीं है, जितनी दिखाई पड़ती है. इस आस्थाविहीन जटिल विश्व में माया अद्भुत प्रकार से आशा को उद्घाटित कर रही है. इस संदर्भ में 'द ट्रायल' और 'द कासल' समान अर्थ प्रतिपादित करती नहीं लगेंगी, वरन एक दूसरे की पूरक प्रतीत होंगी. 'द ट्रायल' एक गुत्थी प्रस्तुत करती है, जिसे एक निश्चित सीमा तक, 'द कासल' में सुलझाया जाता है.

'द कासल' में जो प्रत्येक दिन के प्रति समर्पण हैं, एक आम सामाजिक व्यवहार बन जाता है. के. की महान आशा है कि वह 'किला' उसे अपना ले. इसे अकेला प्राप्त करने में असमर्थ पाकर वह उस गांव का निवासी होकर, विदेशी होने का भाव, जो हर व्यक्ति के व्यवहार से उसे लगता है, त्यागकर, यह अधिकार प्राप्त करना चाहता है. एक काम, एक घर, एक स्वस्थ, सामान्य व्यक्ति की जिंदगी—यह है वह सब, जो के. चाहता है. फ्रायीदा का प्रसंग इस सिलसिले में महत्वपूर्ण है. वह इस स्त्री को अपनी स्वामिनी मान लेता है, चूंकि वह अपने अतीत के कारण किले के एक अधिकारी से परिचित है. वह उससे जो कुछ जानता है, वह के. को अतिक्रमित कर जाता है—जब वह जान पाता है कि क्यों वह 'किले' की कृपा के अयोग्य है.

इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि भूमि-पर्यवेक्षक बर्नाबस बहनों के पास जाने के लिए वह फ्रायीदा से संबंध-विच्छेद कर लेता है, क्योंकि पूरे गांव में बर्नाबस परिवार ही एकमात्र ऐसा है, जो 'किले' द्वारा और गांव द्वारा पूर्णतः परित्यक्त है. अमालिया, सबसे बड़ी बहन ने 'किले' के एक अधिकारी का शर्मनाक प्रस्ताव ठुकरा दिया था. इसी अनैतिक अभिशाप से वह हमेशा के लिए 'ईश्वर' के स्नेह से वंचित हो जाती है. 'ईश्वर' के लिए स्वाभिमान को तिलांजलि न दे पाने का अर्थ स्वयं को उसकी कृपा के लिए अयोग्य प्रमाणित करना है.

यहां 'आशा' शब्द का प्रयोग बेतुका नहीं है, बल्कि उल्टे, काफ्का द्वारा जैसे-जैसे अधिक त्रासद स्थिति का वर्णन किया जाता है, आशा उतनी ही अधिक बलवती होती जाती है. 'द ट्रायल' का एब्सर्ड होना जितना अधिक सच है, उतनी ही 'द कासल' की भावशून्य 'छलांग' अधिक व्यर्थ और दहलाने वाली प्रतीत होती है. किंतु, यहीं हमें पुनः अस्तित्ववादी विचारधारा का एक विरोधाभास मिलता है, जैसा कि उदाहरण के तौर पर कीर्कगार्द ने प्रस्तुत किया है: "सच्ची आशा के लिए जरूरी है कि सांसारिक आशा की हत्या कर दी जाये."

● अनुवाद : दिनेश शाकुल

हैं; बिलकुल न के बराबर; जब कुल्हाड़ी उनके नजदीक आ रही होती है."

"क्या वाकई ऐसा होता है या आप मुझ ज्वरग्रस्त को छल रहे हैं?"

"यह वास्तविकता है, इसे एक सरकारी डॉक्टर का प्रामाणिक कथन मानो."

उसने मान लिया और वह निश्चेष्ट पड़ा रहा, लेकिन यह वक्त भाग निकलने के बारे में, मेरे सोचने का था. घोड़े अभी भी अपनी अपनी जगह निष्ठापूर्वक खड़े थे. मेरे कपड़े, फरकोट, बैग फटाफट बटोर लिये गये. मैं साज-सिंगार में समय बरबाद नहीं करना चाहता था. घोड़े जिस रफ्तार से आये थे, अगर उसी रफ्तार से घर की ओर भी दौड़े तो मुझे इस बिस्तर से, घर में बिछे अपने बिस्तर में छलांग भर लगानी होगी. एक घोड़ा आदेश का पालन करते हुए खिड़की से पीछे हट गया. मैंने टमटम में अपना बंडल फेंका. मेरा फरकोट अपना निशाना चूक गया और उसकी आस्तीन एक हुक में फंस गयी. चलो, बला टली. मैं उछल कर घोड़े पर जा चढ़ा. ढीली हो जमीन पर लटकती घिसटती लगामें, बराएनाम परस्पर बंधे घोड़े, पीछे डोलती टमटम और इन सब के अंत में बर्फ में खराब होता हुआ मेरा रोएंदार कोट! "हुर्र...र.रर.हुश!" मैंने कहा—मगर सरपट दौड़ का कोई संकेत न था. बूढ़ों की मानिंद, हमने धीरे-धीरे बर्फीले निर्जन इलाके रेंगकर पार किये. एक दीर्घ कालखंड हमारे पीछे बच्चों का नया, लेकिन त्रुटिपूर्ण गीत प्रतिध्वनित करता रहा :

खुश हो जाओ ओ रोगियो! बिस्तर में
तुम्हारी बगल में, डॉक्टर को लिटा दिया गया है.

इस गति से मैं कभी घर नहीं पहुंच पाऊंगा. मेरी जमी हुई प्रैक्टिस चौपट समझो. मेरा उत्तराधिकारी मुझे इससे व्यर्थ वंचित कर रहा है, क्योंकि वह मेरी जगह नहीं ले सकता, मेरे घर में साईस कहर बरपा कर रहा है; रोज उसका शिकार है, इस बारे में मैं अब और ज्यादा नहीं सोचना चाहता.

निर्वस्त्र, इस सर्वाधिक नाखुश युग के पाले से अरक्षित, पार्थिव गाड़ी, अपार्थिव घोड़ों के संग मैं; एक बूढ़ा आदमी मैं, भटकता हूं—निरुद्देश्य. टमटम के पिछले हिस्से से मेरा फरकोट लटक रहा है, लेकिन मैं उस तक नहीं पहुंच सकता और मेरे मरीजों के फुर्तीले झुंड में से कोई भी उंगली नहीं उठाता. धोखा! विश्वासघात! रात में कॉलबेल की गलत सूचना पर एक ही बार किये गये अमल की क्षति कभी पूरी नहीं की जा सकती.... कभी नहीं... □

● अनुवाद : विनोद शर्मा

लघुकथाएं

काफ्का शब्दों के कंजूस बेशक न रहे हों, किंतु शब्दों के धनी अवश्य थे. लंबी कहानियों के अतिरिक्त ये लघुकथाएं भी उनकी संघर्षशील मानवीय अभिव्यक्ति का जीवंत प्रमाण हैं—

▣ फ्रैंज काफ्का

कानून के समक्ष

कानून के आगे एक दरबान खड़ा है. इस दरबान के पास एक ग्रामीण आता है और कानून के सामने पेश होने की इजाजत मांगता है. मगर दरबान कहता है, "इस वक्त मैं तुम्हें पेश होने की इजाजत नहीं दे सकता."

ग्रामीण कुछ सोचता है और फिर पूछता है, "क्या कभी बाद में मुझे पेश होने दिया जायेगा?"

दरबान कहता है, "यह हो सकता है, पर इस वक्त नहीं."

दरवाजा आम दिनों की तरह खुला हुआ है. ग्रामीण दरवाजे में से झांककर अंदर देखता है. यह देखकर दरबान हंसता है और कहता है, "यदि तुम इतने ही उतावले हो तो मेरे मना करने के बावजूद अंदर जाने की कोशिश करके देख लो. पर याद रखो, मैं ताकतवर हूं, हालांकि मैं सभी दरबानों में से छोटा हूं. एक कमरे से दूसरे कमरे तक हर दरवाजे पर एक दरबान है और हर दरबान पहले वाले दरबानों से ज्यादा ताकतवर है. तीसरा दरबान तो इतना भयानक है कि मैं भी उसकी तरफ देखने तक का हौसला नहीं कर पाता!"

ग्रामीण ने कभी सोचा भी नहीं था कि कानून से मुलाकात करने में इतनी दिक्कतें पेश आयेंगी. वह तो यही समझता है कि कानून तक हर आदमी की पहुंच हर वक्त आसानी से होनी चाहिए, किंतु अब जबकि उसने तीखी नाक और काली लंबी विरली दाढ़ी वाले दरबान को फर का कोट पहने नजदीक से देखा है तो उसने फैसला किया है कि अंदर जाने की इजाजत मिलने तक इंतजार करना बेहतर है.

दरबान एक स्टूल देकर उसे एक तरफ बैठ जाने देता है, जहां वह दिनों और सालों तक बैठा रहता है. इस बीच वह अंदर दाखिल होने की कई कोशिशें करता है और अपने दुराग्रह से दरबान को उबा देता है. दरबान प्रायः टुकड़े-टुकड़े बातचीत करता है. वह उसके घर और दूसरी कई चीजों के सवाल पूछता है, पर सवाल अनमने ढंग से पूछे जाते हैं, जैसे बड़े जज पूछते हैं और हमेशा इस फैसले के साथ बातचीत खत्म कर देते हैं कि अभी उसे दाखिला नहीं दिया जा सकता.

आदमी सफर के लिए बहुत सारी चीजें साथ लाया था, इनके अलावा और जो कुछ भी उसके पास था, वह सभी कुछ दरबान को रिश्वत चढ़ाने के लिए न्योछावर करता रहा. दरबान सब मंजूर करता हुआ भी हमेशा यही कहता रहा, "मैं ये चीजें तुमसे महज इसलिए ले रहा हूं, ताकि तुम यह न सोचो कि तुमसे कोई भूल हुई है."

इन कई सालों में वह आदमी लगातार अपना ध्यान दरबान पर लगाये रहा. वह दूसरे दरबानों को भूल गया. पहला दरबान उसे कानून तक आसानी से पहुंचने में एकमात्र अड़चन लगता रहा. वह आदमी जवानी भर निडर और ऊंची आवाज में अपनी किस्मत को कोसता रहा, पर बाद में बूढ़ा हो गया और सिर्फ अपने आप में ही बुदबुदाता रहा. वह बच्चों जैसा बन गया.

कई साल दरबान की ही सोच में डूबे रहने के कारण वह उसके फर वाले कालर में छिपे पिस्सुओं को भी जान चुका था. वह पिस्सुओं से भी निवेदन करता कि वे दरबान के दिमाग को बदलने में उसकी मदद करें. धीरे-धीरे दूर से उसे दिखाई देना बंद होने लगा. अब उसे यह भी पता न चलता कि दुनिया सचमुच पहले से ज्यादा अंधेरी हो गयी है या सिर्फ उसकी आंखें ही उसे धोखा दे रही हैं. इतना होने पर भी इस अंधेरेपन में वह कानून के दरवाजे से आने वाली रोशनी के दायरे के प्रति सचेत रहा। फिर उसे लगा कि अधिक देर तक जी नहीं पायेगा. परंतु मरने से पहले इतने सारे सालों के अनुभवों को संजोते-संजोते उसके दिमाग में एक ही बात रह गयी, एक सवाल था, जो उसने अभी तक दरबान से नहीं पूछा. चूंकि वह अपने जकड़े हुए शरीर को अधिक देर तक नहीं संभाल सकता था, इसलिए उसने हाथ हिलाकर दरबान को अपने पास बुलाया. दरबान को उसकी तरफ झुकना पड़ा. क्योंकि कद में बहुत फर्क आ जाने से वह आदमी बहुत ठिगना पड़ गया था.

दरबान ने पूछा, "अब तुम क्या जानना चाहते हो? लगता है, तुम्हारी तसल्ली नहीं की जा सकती."

आदमी ने कहा, "कानून तक पहुंचने की कोशिश हर कोई करता है, पर यहां वर्षों से मेरे सिवा और किसी ने कभी अंदर दाखिल होने की गुजारिश नहीं की, यह कैसे हुआ?"

दरबान फौरन ताड़ गया कि अब यह आदमी अपनी अंतिम घड़ियों तक पहुंच गया है. उसकी शिथिल पड़ी श्रवण इंद्रियों तक अपनी बात पहुंचाने के लिए वह उसके कान में गरजा, "किसी और को यहां कभी दाखिला नहीं मिल सकता था, क्योंकि यह दरवाजा सिर्फ तुम्हारे लिए ही बनाया गया था, जिसे अब मैं बंद करने जा रहा हूं." □

पक्का इरादा

अपने आपको दुःखद मनःस्थिति से निकालना आसान काम होना चाहिए. भले ही आपको ऐसा अपनी इच्छा शक्ति के इस्तेमाल से ही क्यों न करना पड़े. मैं खुद को कुर्सी से उठकर मेज के गिर्द चक्कर लगाने से लेकर सिर और गर्दन की कसरत करने और आंखें झपकाते हुए उनके गिर्द मांसपेशियां कस लेने

को मजबूर करता हूं. अपनी भावनाओं का उल्लंघन करके मैं यह मानकर 'अ' का स्वागत करता हूं कि वह मुझसे मिलने आया है, उदारतापूर्वक अपने कमरे में 'ब' को बर्दाश्त करता हूं और जो कुछ भी 'क' कहता है, उसे कड़वा घूंट समझ कर पी लेता हूं, भले ही आगे न जाने कब तक इसकी वजह से मुझे कितने ही पीड़ा और मुसीबतें ही क्यों न झेलनी पड़ें.

इतना कुछ कर लेने पर यह नहीं हो सकता कि कभी कोई भूल हो न हो. कभी मात्र एक भूल भी हो जाये तो उससे सारा सिलसिला बड़ी आसानी से ठप्प पड़ जायेगा, जिससे कष्ट भी होगा और आपको फिर अपने ही घेरे में सिमट आना होगा.

इसलिए सबसे बढ़िया तरीका यही है कि आप हर चीज से निष्क्रिय होकर पेश आयें. अपने-आपको जड़ पदार्थ बनायें और यदि आप महसूस करते हैं कि आपको बहकाया जा रहा है, तो पशुओं की तरह दूसरों को घूर-घूरकर देखने, या खेद महसूस करने की गरज से कोई जरूरी कदम उठाने जैसे किसी विचार का प्रलोभन छोड़ दें. संक्षेप में, भूत की तरह दंगा करने वाली भी कोई चीज यदि आप में है तो अपने हाथों से उसका गला घोंट दें और उसे बचाये रखने वाली हर बात को खत्म कर दें, इसी से कब्र की अंतिम शांति को लंबे समय तक कायम रखा जा सकेगा.

इस सूरत में अपनी तर्जनी को भवों पर फिराना एक खास हरकत होगी. □

● रूपांतर : सत्येंद्र शर्मा

नगर का कुल-चिन्ह

पहले तो बेबल की मीनार बनाने के लिए सब कुछ यथाशक्ति भली-भांति व्यवस्थित था. वास्तव में संगठन शायद आवश्यकता से अधिक बड़ा था. पथ-प्रदर्शकों, दुभाषियों, कारीगरों के निवास-स्थान और यातायात के लिए सड़कों आदि के विषय पर तो बहुत अधिक विचार किया गया था. ऐसे लगता था मानो शताब्दियों तक निर्विघ्न कार्य करने का सुअवसर प्रशस्त हो. उस समय आमधारणा यह थी कि अत्यंत धीमी गति से निर्माण किया ही नहीं जा सकता. इस धारणा को और अधिक महत्त्व दिये जाने की आवश्यकता होती तो लोग नींव रखने से ही कतराने लगते. तर्क-वितर्क यों चला कि इस सारे क्रिया-कलाप का निचोड़ एक ऐसी मीनार बनाना है जो स्वर्ग तक पहुंच सके. इस विचार के अतिरिक्त बाकी सब कुछ गौण है. यदि विचार के महत्त्व को पूरे तौर पर आत्मसात कर लिया जाये तो फिर वह नष्ट नहीं हो सकता. जब तक पृथ्वी पर मानव का वास है, तब तक मीनार को पूरा करने की इच्छा भी बलवती रहेगी. इस विषय में भविष्य की चिंता की कोई भी आवश्यकता नहीं. क्योंकि यदि एक ही पीढ़ी द्वारा निर्माण पूरा होने की आशा होती तो जल्दी मचाने की कोई तुक भी थी. परंतु इसका तो प्रश्न ही नहीं उठता. यह भी हो सकता है कि अधिक सुविज्ञ भावी पीढ़ी पहली पीढ़ी के कार्य को दोषपूर्ण घोषित कर दे और नये सिरे से प्रारंभ करने की खातिर पुराने को मटियामेट कर दे.

इन विचारों ने जोश ठंडा कर दिया और लोग मीनार बनाने से अधिक कारीगरों के लिए आवास बनाने में रुचि लेने लगे. प्रत्येक जाति अपने लिए सर्वोत्तम आवास चाहती थी. इससे झगड़े पैदा होने लगे जो बाद में खूनी लड़ाइयों में बदल गये. द्वंद्व लगातार बढ़ने लगा. नेताओं के लिए यह नया सबूत था कि चूंकि काम के लिए आवश्यक उत्साह की कमी है, इसलिए मीनार का निर्माण अत्यंत ही धीमी गति से किया जाये. जब तक संभवतः पूर्ण शांति स्थापित न हो जाये तब तक निर्माण कार्य रोक दिया जाये.

ऐसे ही पहली पीढ़ी बीत गयी. परंतु आने वाली पीढ़ियों का समय भी भिन्न नहीं था, सिवाय इसके कि तकनीकी कुशलता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी. साथ ही साथ युद्धस्थिति भी बढ़ती जा रही थी. इसके साथ यह बताना भी आवश्यक है कि दूसरी या तीसरी पीढ़ी द्वारा स्वर्ग तक मीनार बनाने की निरर्थकता को भी जान लिया गया था. परंतु उस समय तक हर आदमी एक दूसरे के साथ इस प्रकार संबद्ध हो गया था कि नगर को छोड़ना पाना संभव न था.

ये सब किंवदंतियां और गीत जिनकी उत्पत्ति इस नगर में हुई है, इस भविष्यवाणी की उत्कंठा से पूरित हैं कि एक दिन एक दानवाकार मुक्के के पांच अनवरत प्रहारों से नगर के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे और वह चूर-चूर हो जायेगा. यही कारण है कि इस नगर का कुल-चिन्ह 'मुक्का' है. □

गमन

मैंने अस्तबल से घोड़ा लाने की आज्ञा दी. नौकर को मेरी बात समझ न आयी. मैं खुद अस्तबल में गया, घोड़े पर जीन चढ़ायी और सवार हो गया. दूर तुरही की आवाज सुनाई दी. मैंने नौकर से पूछा, "तुरही क्यों बज रही है?"

उसे न तो कुछ मालूम था और न ही उसने कुछ सुना था. गेट पर उसने मुझे रोक कर पूछा, "मालिक, आपकी सवारी कहां जा रही है?"

"मालूम नहीं," मैंने कहा, "यहां से दूर, बस यहां से दूर. . . आगे. . . और आगे. . .अपनी मंजिल पर पहुंचने का केवल यही तरीका है."

"तब तो आपको अपनी मंजिल का पता है." उसने कहा.

"हां," मैंने उत्तर दिया, "मैंने तुम्हें बताया तो है. यहां से बहुत दूर . . . वहीं मेरी मंजिल है."

"आपने अपने साथ रसद नहीं रखी?"

"मुझे आवश्यकता नहीं," मैं बोला, "सफर इतना लंबा है कि यदि राह में मुझे कुछ न मिला तो मैं अवश्य भूखों मर जाऊंगा. कोई भी खाद्य-सामग्री मुझे बचा नहीं सकती. सौभाग्यवश सच्चे अर्थों में असीम सफर ही मेरी मंजिल है. □

● रूपांतर : राजेंद्र बोहरा

काफ्का की कहानियां : चार

दंपति

व्यापार तो है ही बुरी चीज. अब देखिए न, दफ्तर के काम से जब जरा भी मुझे छुट्टी मिलती है, मैं अपनी नमूनों की पेटी उठाकर खुद ही अपने ग्राहकों से मिलने चल देता हूं. काफी दिनों से एन के पास जाने की इच्छा थी. कभी एन के साथ मेरा काफी अच्छा कारोबार चल रहा था, पर पिछले कुछ सालों से यह ठप्प पड़ गया था. क्यों? यह तो मुझे भी नहीं पता. ऐसा अघट तो कभी बिना सचमुच के किसी कारण के भी घट सकता है. आज के हालात हैं ही ऐसे कि किसी का महज एक शब्द भी सारे मामले को उलटकर रख सकता है और उसी तरह एक ही शब्द सब कुछ ठीक-ठाक भी कर सकता है. एन के साथ कारोबार करना बड़ा नाजुक मामला है. वह एक बूढ़ा आदमी है और बुढ़ापे के कारण काफी अशक्त भी हो गया है, फिर भी वह अपने कारोबारी मामलों को अपने ही हाथ में रखना पसंद करता है, अपने ऑफिस में तो वह आपको शायद ही कभी मिले और उससे मिलने के लिए उसके घर जाना एक ऐसा काम है, जिसे कोई भी भला आदमी टालना ही पसंद करेगा.

फिर भी कल शाम करीब छह बजे मैं घर के लिए निकल ही पड़ा. यह किसी से मिलने जाने का समय तो नहीं था, पर मेरा वहां जाना कारोबारी कारण से था, कोई सामाजिक सद्भावना नहीं. सौभाग्य से एन घर पर ही था. अभी वह अपनी पत्नी के

साथ सैर करके लौटा था. नौकर ने बताया कि इस समय वह अपने बेटे के सोने के कमरे में है. बेटा बीमार था. नौकर ने मुझसे वहीं जाने का आग्रह किया. पहले तो मैं थोड़ा हिचका, फिर सोचा कि इस अप्रिय मुलाकात को जल्दी जल्दी निपटाया जाना चाहिए. और मैं जैसा का तैसा, यानी ओवरकोट और हैट के बीच बंधे हाथ में नमूनों की पेटी लिये एक अंधेरे कमरे को पार करके एक नीम-अंधेरे कमरे में दाखिल हुआ, तीन-चार लोग वहां पहले से ही मौजूद थे.

▣

मेरी पहली नजर स्वतः ही जिस आदमी पर पड़ी, वह एक एजेंट था, जिसे मैं अच्छी तरह जानता था. एक तरह से वह मेरा कारोबारी प्रतिद्वंद्वी था. मुझे लगा, वह मुझसे पहले ही बाजी मार ले गया है. वह आराम से बीमार के बिस्तर के पास ही बैठा था, जैसे वह कोई डाक्टर हो. वह निर्लज्ज-सा अपने सुंदर ओवरकोट के बटन खोले बैठा था. बीमार आदमी भी शायद अपने विचारों में खोया हुआ था. उसके गाल बुखार से तमतमा रहे थे. वह बीच-बीच में उस आगंतुक की ओर भी देख लेता था. एन का बेटा छोटी उम्र का नहीं था, मेरी ही उम्र का होगा. उसकी छोटी-सी दाढ़ी बीमारी के कारण छितरायी हुई थी. बूढ़ा एन लंबा-तगड़ा आदमी था, उसके कंधे काफी चौड़े थे. पर यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि वह अब दुबला गया था. कमर भी झुक गयी थी, अशक्त हो गया था. उसने अभी तक अपना फर का कोट उतारा नहीं था. वह अपने बेटे से कुछ फुसफुसा रहा था. उसकी पत्नी छोटे कद की दुबली और फुर्तीली महिला थी. बावजूद ऊंचाई में उतना फर्क होने के वह उसे कोट उतारने में मदद करने लगी, हालांकि इसमें उसे दिक्कत हो रही थी, पर आखिरकार वह सफल हो गयी. पर असल दिक्कत तो एन के अधैर्य की वजह से थी. कोट उतरते न उतरते वह अपने हाथों से आरामकुर्सी के हत्थे टटोलने लगा था. उसकी पत्नी ने कोट उतरते ही आरामकुर्सी जल्दी से उसके पास सरका दी और खुद उसका कोट उठाकर चली गयी! उसे उठाये हुए वह खुद उसके बीच में लगभग ढंक गयी थी.

▣

आखिरकार जब मुझे ऐसा लगा कि वह समय आ गया है या कहूं कि खुद-ब-खुद तो वह समय नहीं आयेगा, पर जो कुछ करना है, मुझे जल्दी ही कर लेना चाहिए. मुझे लग रहा था कि कारोबारी बातचीत के लिए समय धीरे-धीरे प्रतिकूल होता जा रहा है. उस एजेंट के लक्षण तो मुझे ऐसे दिख रहे थे, जैसे वह यहीं जमा रहना चाहता है, जो मेरे बस का नहीं था. दूसरे, मैं उसका जरा भी नोटिस नहीं लेना चाहता था. इसलिए मैंने बिना किसी भूमिका के चटपट अपनी धंधे की बात शुरू कर दी, भले ही मैं यह भी समझ रहा था कि एन इस समय अपने बेटे के साथ बात करना चाह रहा है. दुर्भाग्य से ये मेरी आदत हो गयी थी कि जब मैं

अपनी असली बात पर आता हूं—जो कि आमतौर पर जल्दी ही आ जाता हूं. इस मामले में तो समय और भी कम लगा, तो मैं बात करते-करते खड़ा हो जाता हूं और चहलकदमी करने लगता हूं.किसी ऑफिस में तो यह हरकत बड़े स्वाभाविक तरीके से हो सकती है, पर यहां काफी अटपटा लग रहा था. फिर भी मैं खुद को रोक नहीं पाया, इसका एक कारण और भी था, सिगरेट की बड़ी तलब लग रही थी. ठीक है, हर आदमी की कुछ बुरी आदतें तो होती ही हैं, पर उस एजेंट की हालत को देखकर तो मुझे कॉफी राहत पहुंच रही थी. उसकी हालत काफी पतली लग रही थी. वह अचानक घुटने पर रखा हुआ अपना हैट उठाकर झटके से सिर पर रख देता और फिर वहां उसे ऊपर-नीचे करता रहता. फिर अचानक उसे लगता कि उससे कोई गलती हो गयी है तो एकदम वापस घुटने पर रखता. हर एक-आध मिनट में वह काफी हरकतें दोहरा रहा था. इस तरह निश्चय ही अक्षम्य है. मुझे तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ रहा था, क्योंकि मैं तो चहलकदमी करता हुआ अपने प्रस्तावों में पूरी तरह से खोया हुआ था और उसे अनदेखा कर रहा था, पर उसकी यह हरकत और लोगों को तो आपे से बाहर कर रही होगी.

दरअसल मैं जब अपनी बात में पूरा रम जाता हूं तो इन हरकतों की ही क्या, किसी भी बात की परवाह नहीं करता. जो कुछ होता रहता है, उसे मैं देखता तो हूं, पर उस ओर तब तक कोई ध्यान नहीं देता, जब तक कि अपनी बात पूरी न कर लूं या कोई दूसरा व्यक्ति किसी तरह की आपत्ति प्रकट न करे. इसलिए मैं सब कुछ देख रहा था. मसलन एन मेरी बात को जरा भी कान नहीं दे रहा था, कुर्सी के हत्थे पकड़े वह बिना मेरी ओर देखे बेचैनी से कसमसाया. वह कहीं शून्य में टकटकी लगाये देख रहा था, जैसे कुछ तलाश कर रहा हो. उसके चेहरे को देखकर कोई भी समझ सकता था कि मेरे कहे हुए एक भी शब्द से, या सही कहें तो मेरी उपस्थिति से भी पूरी तरह से अनभिज्ञ लग रहा था. उसकी हालत और बीमार की हालत मेरे लिए शुभ लक्षण नहीं थे, फिर भी मैंने स्थिति को काबू में रख अपनी बात जारी रखी, जैसे मुझे विश्वास हो कि मैं अपनी बात कहकर सारा मामला फिर से ठीक कर लूंगा. मैंने उसके सामने एक लाभकारी प्रस्ताव रखा—हालांकि बिना मांगे ही जिस तरह की रियायतें देने की बात मैंने कह दी थी, उसने खुद मुझे ही चौंका दिया था. इस बात से मुझे बड़ा संतोष मिला कि मेरे इस प्रस्ताव ने उस एजेंट को चक्कर में डाल दिया था. उसपर एक सरसरी नजर डालते हुए मैंने देखा कि हैट को जहां का तहां छोड़कर उसने अपने हाथ अपनी छाती पर बांध लिये थे. मुझे यह स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं है कि मेरे इस कृत्य का उद्देश्य उसे धक्का पहुंचाना भी था. अपनी इस जीत के उत्साह में मैं काफी देर तक अपनी बात कहता रहता, पर तभी उसके बेटे ने, जिसे मैं अपनी इस योजना में फालतू चीज समझे बैठा था, बिस्तर से उठकर कांपते हाथों से मुझे धक्का दे दिया. हो सकता है, वह कुछ कहना चाहता हो या किसी बात की ओर संकेत करना चाहता हो, पर इसकी उसमें ताकत न हो. पहले तो मुझे लगा, जैसे उसका दिमाग घूम गया है, पर जब मैंने बूढ़े एन पर बोर नजर डाली तो सारी बात समझ में आ गयी.

लघुकथा

घर पहुंचते हुए

गरज के साथ छींटे पड़ने के बाद हवा में कितना मोहक आकर्षण होता है! मेरी खूबियां उजागर होकर मुझपर हावी हो जाती हैं, हालांकि मैं कोई विरोध भी नहीं करता.

मैं लंबे-लंबे डग भरता हूं और मेरी गति मेरी तरफ की पूरी गली की, पूरे क्वार्टर की गति है. दरवाजों अथवा मेज पर थपथपाहट करने, अपने बिस्तर में लेटे अथवा नये भवनों के ढांचों में छिपे या अंधेरी बंद गलियों की दीवारों के साथ एक दूसरे से सटे अथवा वेश्यालयों के दीवानों पर पड़े आशिकों के नाम पिये गये सभी शुभकामना जामों की जिम्मेदारी मुझी पर है.

मैं अपने विगत को अपने भविष्य से तौलता हूं, परंतु मैं दोनों को तारीफ करने लायक ही पाता हूं, किसी को भी अधिमान नहीं दे पाता और विधाता के अन्याय पर कुछ बुदबुदा भी नहीं सकता, जिसने साफ तौर पर मेरा पक्ष लिया है.

जीने में कोई भी चीज ऐसी नहीं मिली, जिसपर मैं मनन कर सकूं, सिर्फ अपने कमरे में पहुंचकर ही मैं कुछ मनन कर पाता हूं. इससे मुझे पूरी खिड़की खोल देने के बाद भी बाग में चल रहा संगीत सुनाई नहीं देता. □

एन की खुली हुई आंखें भावशून्य और सजी हुई थीं, लग रहा था कि उसे बहुत कमजोरी महसूस हो रही है. वह कांप रहा था और उसका शरीर आगे की ओर झुका जा रहा था, जैसे कोई उसके कंधों को ठोंक रहा हो, उसका निचला होंठ या कहें कि निचला जबड़ा लटक गया था और वहां से झाग-सा बाहर आ रहा था. उसका पूरा चेहरा चित्रलिखित-सा लग रहा था. वह बड़ी कठिनाई से सांस ले पा रहा था. फिर अचानक जैसे उसे सारे कष्ट से मुक्ति मिल गयी हो, उसने कुर्सी पर पीठ टिकाकर आंखें बंद कर लीं. एक दर्द का गहरा एहसास उसके चेहरे पर से गुजरा और सब कुछ खत्म हो गया. मैं झटके से उसकी ओर गया और उसकी बेजान कलाई थाम ली. वह इतना ठंडा था कि एक बार तो ठंड की एक लहर मेरे पूरे शरीर में दौड़ गयी; नब्ज थम गयी थी यानी सब खत्म हो गया था. कुछ भी हो, वह काफी बूढ़ा हो गया था. काश, हम सबको भी ऐसी मौत नसीब होती! लेकिन अब क्या करूं! मैंने मदद के लिए आसपास देखा; उसके बेटे ने चादर सिर तक ओढ़ ली थी और उसकी सिसकियों की आवाज मैं साफ सुन रहा था. वह एजेंट तो किसी मछली की तरह ठंडा लग रहा था. वह एन से दो कदम दूर अपनी कुर्सी पर अचल बैठा था और लग रहा था कि वह कुछ नहीं कर पायेगा. इसलिए मैं ही एकमात्र वह व्यक्ति था, जो कुछ कर सकता था, बड़ा कठिन काम था उसकी पत्नी को उसकी मौत

की खबर देना, और वह भी इस तरह कि वह उसे सहन कर सके. बगल के कमरे से मुझे उसकी पदचाप सुनाई देने लगी थी.

▣

वह अभी तक बाहर वाले कपड़ों में ही थी. उन्हें बदलने का उसे अभी तक समय ही नहीं मिला था. वह अपने पति को पहनाने के लिए आग के सामने गर्म करके एक नाइट-शर्ट लायी थी. हमें स्थिर बैठे देख उसने मुस्कराते और अपनी गर्दन हिलाते हुए कहा, "वे सो गये हैं!" अपने अपरिमित निर्दोष विश्वास के साथ उसने उसकी वही कलाई पकड़ी, जो कुछ देर पहले मैंने पकड़ी थी और बड़े प्रमुदित मन से उस पर एक चुंबन अंकित कर दिया. हम तीनों आश्चर्य से देखते ही रह गये कि एन हिला और उसने जंभाई ली. पत्नी ने उसे नाइट-शर्ट पहनायी और इतनी लंबी सैर के लिए, जिसने उसे थका दिया था, उसे उलाहना देने लगी . वह उस उलाहने को खीज और व्यंग्य के भाव से सुनता रहा और जवाब में उससे कहा कि वह उकताने लगा था और उसी वजह से उसे नींद आ गयी थी. और फिर कुछ देर के लिए आराम करने को उसे बीमार के बिस्तर पर ही लिटा दिया गया था, सिर के नीचे रखने के लिए उसकी पत्नी जल्दी से दो तकिये ले आयी थी और बीमार के पायताने की ओर रख दिये थे. अपने कमरे में उसे इसलिए नहीं जाने दिया गया, क्योंकि वहां जाने के लिए एक खाली कमरे से गुजरना पड़ता था और उसमें उसे ठंड लग सकती थी. जो कुछ पहले घटा था, अब उसमें मुझे कोई विचित्रता नहीं लग रही थी. फिर उसने शाम का अखबार मांगा और बिना अपने मेहमानों की ओर जरा भी ध्यान दिये अखबार खोल दिया. वह अखबार पढ़ नहीं रहा था. यों ही उसपर इधर-उधर नजरें फेंक रहा था. उसने हमारे प्रस्तावों पर कुछ अप्रिय टिप्पणियां भी कीं. उसने अपने हाथ को बड़े तिरस्कारपूर्ण ढंग से हिलाते हुए जिस तरह की तीखी टिप्पणियां की थीं, उसमें इस बात की ओर स्पष्ट संकेत था कि कारोबार करने के हमारे तरीकों ने उसके मुंह का स्वाद खराब कर दिया है. इसपर उस एजेंट ने एक-दो टिप्पणियां कर ही दीं. इसमें कोई शक नहीं कि जो कुछ घटा था, उसकी क्षतिपूर्ति का यह सबसे घटिया तरीका था. जल्दी ही मैंने उससे विदा ले ली. मैं उस एजेंट का आभारी था, क्योंकि अगर वह न होता तो मुझे वहां से फूट निकलने का इतना अच्छा तरीका न मिल पाता.

▣

बाहर निकलते हुए बरामदे में मुझे श्रीमती एन मिल गयीं. उनकी करुण मूर्ति को देखकर मैंने कहा कि उन्हें देखकर मुझे अपनी मां की याद आ गयी है. उन्हें चुप देख मैंने आगे कहा, "लोग जो भी कहें, पर वह चमत्कार कर सकती थीं. जिन चीजों को हम तोड़-फोड़ देते, वह उन्हें फिर से ठीक कर देतीं. जब मैं बच्चा था, तभी उनकी मृत्यु हो गयी थी." मैंने यह बात बड़े धीरे-धीरे और सुस्पष्ट ढंग से कही, मेरा खयाल था कि वह बूढ़ा जरा ऊंचा सुनती है, पर वह तो बिल्कुल भी नहीं सुन पाती थी, क्योंकि मेरी बात को बिना समझे उसने पूछा था, "मेरे पति आपके प्रस्ताव पर क्या कह रहे हैं?" विदाई के दो-चार शब्दों

फ्रैंज काफ्का के प्रति

▣ एडविन मूर

वरदान की संभावना में लगभग नारकीय यंत्रणा भोगते
हम यदि किसी दिन बुलाये गये
उच्चस्तरीय मंत्रणा हेतु
अधिकारी जनों द्वारा
जो चुने गये हैं विभिन्न समयों में श्रेष्ठ व निकृष्टतम
तो हमारी स्थिति कितनी जलील होगी!
आह, उस शर्मनाक नजारे को,
अस्वीकृत होने के अनेकार्थी अपयश को
हम कभी बर्दाश्त न कर सकेंगे
हम अपने नाम की पुकार पर
शायद ही जवाब देंगे
और पथ पर साफ भटक जायेंगे दिशा.
किंतु तुम, प्रिय फ्रंज !
अस्पष्ट व आंशिक दुनिया के उदास विजेता!
ध्यान से देखोगे
चुगली खाती हुई शर्मिंदगियों को एक ढेर में बदलते हुए
(मानो वे क्षतिपूर्ति हों खजाने की)
निस्पृह भाव से नहीं,
बल्कि अर्थ झपट लेने को तत्पर भूखे आवेश के साथ
और पाप के पत्तों पर पढ़ोगे
अदृश्य की गुप्त लिपि, बचे रह पाने का सबूत !

(अनुवाद : दिनेश शाकुल)

***श्री एडविन मूर व उनकी पत्नी श्रीमती विला मूर को ही काफ्का के अधिकांश कृतित्व को प्रामाणिक रूप में अंग्रेजी में अनुवाद करने का श्रेय है. प्रस्तुत कविता उनके कविता संग्रह 'बन फुट इन इदेन' से ली गयी है.** □

के बीच मुझे यह भी लगा कि वह मुझे एजेंट समझ रही है, क्योंकि मैं समझता हूं कि अन्यथा वह अधिक विनयी होती.

फिर मैं सीढ़ियां उतर गया. उतरना चढ़ने से ज्यादा थका देने वाला साबित हुआ, हालांकि चढ़ना भी काई आसान नहीं था. ओह, कितनी ही कारोबारी मुलाकातें ऐसी होती हैं, जिनका कोई परिणाम नहीं निकलता, पर इसके लिए हाथ पर हाथ धरे भी तो नहीं बैठा जा सकता और मुलाकातें करते रहना पड़ता है. □

(प्रस्तुति : सुरेश उनियाल)

काफ्का की कहानियां : पांच

काफ्का वस्तुतः एक उपन्यास लिख रहे थे, जो इतना ही लिखा जाकर अधूरा रह गया. परंतु यह जितना भी लिखा गया, वह भी अपने-आप में एक पूरी कहानी है—

शराबी से बातचीत

ज्यों ही मैंने अगले दरवाजे से एक कदम बाहर रखा त्यों ही चांद-सितारों से जगमगाते विशाल आकाश के साथ-साथ टाउन-हाल, विरजिन मैरी और चर्च तथा बड़े चौक ने अकस्मात मुझे थाह लिया.

मैं चुपचाप छांव से निकलकर चांदनी में चला गया. कोट के बटन खोलकर खुद को गर्म किया. फिर मैंने रात के शोर को खामोश कराने के लिए हाथ उठाकर वंदना शुरू कर दी.

"तुम इस तरह से पेश आते हो जैसे कि तुम असली हो...अब इसका मतलब क्या है? क्या तुम मुझे यह यकीन दिलाने की कोशिश कर रहे हो कि मैं असली नहीं हूं, घास की हरी पट्टी पर खड़ी एक बेढब चीज हूं? मगर फिर भी यह बहुत मुद्दत पहले की बात है कि तुम असली थे. आसमान! तुम भी...और जहां तक तुम्हारी बात है, पुराने टाऊन स्कवेयर! तुम भी कभी असली नहीं हुए."

"परमात्मा का शुक्र है चांद! कि तुम चांद नहीं रहे, पर शायद यह मेरी लापरवाही है कि मैं सिर्फ तुम्हारा नाम 'चांद' होने की वजह से तुम्हें 'चांद' कहे जा रहा हूं. जब मैं तुम्हें 'एक अनोखी रोशनी वाली एक बिसरी हुई कागज की लालटेन कहता हूं' तो तुम इतने कम मगरूर क्यों हो जाते हो? और जब मैं तुम्हें 'मैरी कालम' कहता हूं तो तुम नजर से लगभग ओझल ही क्यों हो जाते हो? और मैरी कालम! जब मैं तुम्हें 'पीली रोशनी देने वाला चांद' कहता हूं तो तुम बहुत कम रोबीली लगती हो."

"सचमुच ऐसा लगता है कि अगर तुम अपने बारे में सोचे जाने पर तकलीफ महसूस करते हो तो तुम्हारा कौशल और तुम्हारा हौसला मंद पड़ने लगता है."

"हे ईश्वर! एक सोच-समझ वाले आदमी के लिए एक शराबी से कुछ सीखना कितना फायदेमंद साबित होगा!"

"हर चीज इतनी चुप क्यों हो गयी है? मैं समझता हूं हवा रुक गयी है और छोटे-छोटे मकान जो प्रायः चौक के आर-पार इस तरह घूमते हैं जैसे छोटे-छोटे पहियों पर टिके हों, वे भी अब चुप, निश्चल खड़े हैं! उन्हें जमीन से अलग करने वाली महीन काली लकीर भी दिखाई नहीं देती."

"और मैंने दौड़ना शुरू कर दिया. मैं बड़े चौक के गिर्द बिना रुके, बगैर किसी अड़चन के तीन बार दौड़ा. फिर भी मुझे कोई शराबी आदमी नहीं मिला. अपनी रफ्तार कम किये बगैर मैं खुद-ब-खुद चार्ल्स स्ट्रीट की तरफ दौड़ पड़ा. मेरे साथ-साथ दीवार पर मेरी परछाई भी दौड़ी जो अक्सर मुझसे छोटी ही रही, मानो मकान और गली के बीच एक खाई में पड़ी हुई हो.

जैसे ही मैं दमकल केंद्र से गुजरा, मुझे छोटे चौक से शोर सुनाई दिया और उसकी तरफ मुड़ते हुए मैंने फव्वारे की जाली पर एक शराबी को खड़े पाया.

"गुड मार्निंग, भले आदमी! मेरी उम्र तेईस साल की हो चुकी है, पर अभी तक मेरा कोई नाम नहीं रखा गया. मगर तुम, मुझे यकीन है कि बहुत बढ़िया मीठे-से नाम के साथ, महान शहर पेरिस से आये हो. तुममें फ्रांस के विलासी दरबार की महक आ रही है."

"बेशक अपनी इन फैली हुई आंखों से तुमने उन खानदानी औरतों को देखा है जो तेज रोशनी वाली छतों पर खड़ी होकर अपनी पतली कमर मटकाती रहती हैं, जबकि कशीदाकारी वाली उनकी पोशाक पांवों तक फैली होती है. वे अभी भी बगीचे में रेत पर चलती हैं. यह सच है, पर क्या यह सच नहीं कि आकर्षक भूरे कोटों और सफेद पतलूनों वाली

वर्दी पहने गरीब नौकर थोड़े-थोड़े फासलों पर लगे लंबे खंभों पर चढ़ रहे हैं. सबकी टांगें खंभों के गिर्द लिपटी हैं, परंतु शरीर कभी-कभी पीछे और अगल-बगल की तरफ झुका होता है. उन्हें विशाल भूरे तंबू की रस्सियों को खंभों से बांधकर उसे ऊंचा खड़ा करना है, क्योंकि वे खानदानी औरतें बादलों की छाया वाली सुबह का लुत्फ लेना चाहती हैं?"

▣

उसने डकार लिया और मैंने घबड़ाहट में कहा, "क्या यह सचमुच सत्य है श्रीमन्, कि आप हमारे पेरिस, तूफानी पेरिस, जोश की बौछार करने वाले पेरिस से आये हैं?" जब उसने फिर डकार लिया तो मैंने आत्मविश्वास खोते हुए कहा, "मैं जानता हूं कि मुझे बहुत इज्जत बख्शी जा रही है!" और मैंने तेजी से उंगलियां चलाते हुए अपने कोट के बटन बंद कर लिये. फिर शमति-शमति आग्रह किया, "मैं जानता हूं कि तुम मुझे कोई उत्तर देने के काबिल नहीं समझते, परंतु आज अगर मैंने तुमसे यह बात न पूछी होती तो मेरे लिए जीना दूभर हो जाता."

"अर्ज है, मेरे भले आदमी! क्या वे कहानियां सच हैं जो मैंने सुनीं? क्या पेरिस में आमोद-प्रमोद में मस्त लोग हैं? और मकानों में सिर्फ अंदर जाने के ही दरवाजे हैं? क्या यह भी सच है कि गर्मियों के दिनों में आसमान में दिल की आकृति वाले सफेद बादलों के छोटे-छोटे टुकड़े छाये रहते हैं और आसमान सिर्फ पल भर के लिए ही नीला दिखाई देता है? क्या वहां खचाखच भरा एक अजायबघर नहीं है, जिसमें सिर्फ पेड़ हैं...और जिन पर बहुत मशहूर योद्धाओं, मुजरिमों और आशिकों के नामों की तख्तियां लटकी रहती हैं?"

"ऐसी खबर और फिर पेरिस से? साफ तौर पर झूठी खबर है!"

"पेरिस की गलियां अचानक जाम होने लगी हैं, क्या ऐसा नहीं है? वे खचाखच भर गयी हैं, क्या नहीं भरीं? चीजों को हमेशा ठीक-ठाक नहीं रखा जा सकता, किस तरह रखा जा सकता है? कोई हादसा होना तय है, लोग अगल-बगल की गलियों से झुंडों के झुंड बनाकर नगर के फाटक को चकनाचूर करते हुए आते हैं, रास्ते की पट्टी को दरवाजा मुश्किल से ही छूता है. बेशक लोगों में उत्सुकता होती है, परंतु वे निराश होने से डरते भी हैं, वे तेज-तेज सांसे लेते हैं और अपने छोटे-छोटे सिरों को आगे की तरफ ढकेले चले जाते हैं. परंतु जब वे एक दूसरे से टकरा जाते हैं तो वे झुककर एक दूसरे से क्षमा मांगते हैं."

"मुझे अफसोस है, मैंने जानबूझकर ऐसा नहीं किया...कितनी भीड़ है... कृपया मुझे माफ करें...मुझसे बहुत बेहूदगी हुई...मेरी ही गलती है. मेरा नाम है...मेरा नाम...जरोमे फरोशे, है, मैं रयू डू कैबोटिन में मसालों का व्यापारी हूं... मुझे इजाजत दीजिए मैं कल आपको भोजन पर आमंत्रित कर सकूं...मेरी बीवी बहुत खुश होगी."

▣

वे इस तरह की बातें करते हैं. हालांकि गली में हो-हल्ला मचा रहता है और चिमनियों का धुआं मकानों के बीचोबीच फैल रहा होता है, फिर भी वे इस तरह की बातचीत में जुटे रहते हैं. दरअसल, इस तरह की बातचीत जरूरी भी है. किसी फैशनप्रस्त इलाके की भीड़-भड़ाके वाली चौड़ी सड़क पर चार पहियों वाली कुछ बग्घियों को अचानक रुकते हुए भी देखा जा सकता है. सेवक बड़ी गंभीर मुद्रा में गाड़ियों का दरवाजा खोलते हैं. साइबेरिया की भेड़िया नस्ल के आठ सुंदर कुत्ते भौंकते हुए अपने पिछले पैरों को कुदाते बड़ी मुश्किल से सीधे सड़क के रास्ते पर चलते हैं. और कोई कह देता है कि वे छलिया रूप धारण किये कोई पारसी छैला है."

उसने अपनी आंखें कसकर बंद कर ली हैं. जैसे ही मैंने बोलना बंद किया, उसने दोनों हाथ अपने मुंह में डालकर अपने निचले जबड़े को फैलाया. उसके कपड़े खराब हो गये. शायद उसे किसी सार्वजनिक गृह से निकाल फेंका गया है और उसे अभी भी पता नहीं कि वह कहां खड़ा है.

दिन और रात के बीच का यह छोटा-सा लमहा था, जब किसी व्यक्ति का सिर अनजाने ही भारी होकर लटक जाता है, और इस बात से बेखबर हर चीज अपना सांस थाम लेती है, क्योंकि कोई भी देख नहीं रहा होता...और फिर वह नजर से ओझल हो जाता है. इस बीच थकान से चूर कोई वहां सिर झुकाए खड़ा होता है, फिर जब सिर ऊपर उठाकर देखता है तो पाता है कि कुछ भी दिखाई नहीं देता, हवा का चलना भी महसूस नहीं किया जा सकता, परंतु मन ही मन कुछ फासले पर खड़े मकानों को याद रखने की कोशिश करता है, जिनकी छतें और आसमान की ओर उठी नोकीली चिमनियों से अंधेरा रिस-रिस कर घरों की दुछतियों से होता हुआ विभिन्न कमरों में फैल जाता है.

यह खुशकिस्मती है कि कल एक दूसरा दिन होगा, जिसके बारे और चाहे कुछ भी न कहा जा सके, तो भी दिन में हर चीज को देखा तो जा सकेगा.

फिर उस शराबी ने अपनी भवें इतनी ऊंची उठायीं कि भवों और उसकी आंखों के मध्य एक चमक दिखाई देने लगी. उसने लड़खड़ाती हुई आवाज में कहा, "ऐसा है, मुझे नींद आ रही है. इसलिए मैं सोने जा रहा हूं. वेंसेस्लस स्केवयर में मेरा साला रहता है...मैं वहीं जा रहा हूं, मैं वहीं ठहरा हूं, वहीं मेरा बिस्तर है. मैं अब वहीं जा रहा हूं. मैं नहीं जानता कि उसका नाम क्या है और वह कहां रहता है...लगता है मैं भूल गया हूं...पर इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि यकीनन तो मैं यह भी नहीं जानता कि मेरा कोई साला भी है. अच्छा, मैं जा रहा हूं...क्या तुम सोचते हो कि मैं उसे कभी ढूंढ़ सकूंगा?"

मैंने बिना सोचे उसे उत्तर दे दिया, "बेशक, तुम उसे ढूंढ़ लोगे. पर तुम यहां अजनबी हो और तुम अपने रिश्तेदार को भूल गये हो... मुझे इजाजत दो कि मैं तुम्हें पहुंचा दूं."

उसने कोई जवाब नहीं दिया. इसलिए मैंने सहारा देने के लिए अपना हाथ उसकी तरफ बढ़ा दिया और उसने इसे थाम लिया. □

● रूपांतर : सत्येंद्र शर्मा

काफ्का की

कहानियां: छह

'द हंगर आर्टिस्ट सीरीज' की अंतिम कहानी जिसे काफ्का ने मृत्यु से लगभग तीन माह पूर्व लिखा . . . और इस तरह यही कहानी काफ्का की अंतिम कहानी भी बन गयी.

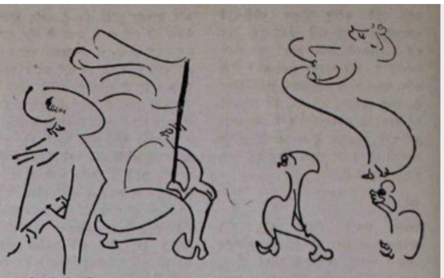

लिखते-लिखते काफ्का प्रायः अक्षरों की भाषा छोड़कर रेखाओं की भाषा में बात करने लगते थे—यह उन्हीं का बनाया हुआ एक रेखाचित्र है.

किस्सा जोसेफाइन गानेवाली का...उर्फ चूहों की दुनिया

हमारी गानेवाली का नाम है—जोसेफाइन. जिसने उसका गाना न सुना हो वह भला उसके गाने की ताकत को क्या जाने. हम तो भई, बहुत संगीत प्रेमी जाति के लोग हैं नहीं, फिर भी शायद ही कोई हो, जो उसका गाना सुनकर मुग्ध न हो जाये. हम लोग शांत संगीत पसंद करते हैं. हमारा जीवन बहुत कठोर है और हम लोग कोशिश करने पर भी दैनिक चिंताओं से मुक्ति नहीं पा सकते और संगीत जैसी अपने जीवन से बहुत दूर की चीज की ऊंचाई तक नहीं पहुंच पाते. पर हम इस बात का रोना लेकर भी नहीं बैठते. न इतना सोचते ही हैं, हमारी अपनी विशेषता है थोड़ी-सी बनावट. और आपसे क्या छिपाना, यह तो हमारे लिए जरूरी भी है. इसी बनावटी मुस्कान के पीछे हमें अपनी सभी कमजोरियों को छिपाने की आदत पड़ गयी है. जोसेफाइन की बात और है. उसे तो संगीत से प्यार है और जानती भी है कि इसे कैसे प्रसारित किया जाये. उसके मरने के बाद तो — और वह जी भी कितना पायेगी —हमारे जीवन से संगीत लुप्त ही हो जायेगा.

मैंने कई बार सोचा कि उसके संगीत का असली तात्पर्य क्या है? हम तो बिल्कुल बेसुरे लोग हैं, तो फिर हम कैसे जोसेफाइन के संगीत को समझ लेते हैं? लेकिन जोसेफाइन तो यह बात मानती नहीं, इसलिए कम से कम हम यह क्यों समझ लेते हैं कि हम उसे समझ रहे हैं? इसका सबसे आसान जवाब तो यही हो सकता है कि उसका गाना इतना सुंदर होता है कि संवेदना रहित मनुष्य भी उसे अनसुना नहीं कर सकता. पर यह संतोषजनक जवाब नहीं है. अगर सचमुच ऐसी बात होती तो हममें एक तात्कालिक और स्थायी अनुभूति जागती, जो सामान्य से भिन्न होती. हमें लगता है कि उसके गले से कोई ऐसी ध्वनि उत्पन्न हो रही है, जिसे हमने पहले कभी नहीं सुना और जिसे सुनने में हम सक्षम नहीं हैं, जिसे जोसेफाइन के अलावा और कोई हमें नहीं सुना सकता. पर मेरे खयाल से ऐसी बात नहीं है, क्योंकि न तो मुझे और न ही किसी और को कभी ऐसा लगा. आपस में बात करते हुए हम यह स्वीकार करते कि जोसेफाइन का गाना, जहां तक सिर्फ गाने का सवाल है, यह आम गाने से बहुत अलग नहीं है.

तो क्या गाना ही सब कुछ है? हालांकि हम संगीतविहीन लोग हैं. फिर भी हमारी संगीत की एक परंपरा है. पुराने समय में हमारे पुरखे गाया करते थे. यह बात लोक-कथाओं में मिलती है और कुछ गाने अभी तक बचे हुए हैं. पर यह भी सच है कि अब हममें से कोई भी नहीं गा सकता. इसलिए हमें यह आभास तो है कि गाना क्या है और जोसेफाइन की कला इसके अनुरूप नहीं है. तो फिर क्या यह गाना है? क्या यह सिर्फ सीटी बजाना नहीं है? और सीटी बजाना तो हम सब जानते हैं. यह हमारे लोगों की वास्तविक कलात्मक उपलब्धि है, बल्कि इसे मात्र उपलब्धि के बजाय हमारे जीवन की विशिष्ट अभिव्यक्ति कहा जा सकता है. हम सभी सीटी बजाते हैं, पर कोई सपने में भी नहीं सोचता कि सीटी बजाना किसी तरह की कला है. हम बिना ऐसा सोचे ही सीटी बजाते हैं. बल्कि बेखयाली में ही बजाते रहते हैं. इसमें से बहुतों को तो यह भी पता नहीं कि सीटी बजाना हमारी विशेषता है. इसलिए अगर यह सही है कि जोसेफाइन गाती नहीं, सीटी बजाती है—और कम से कम मुझे तो ऐसा लगता है कि उसका स्तर सामान्य सीटी बजाने से ऊपर नहीं है—फिर भी जो ताकत उसमें है वह आमतौर पर हमारे सीटी बजाने में नहीं है. कोई भी कुम्हार

अपना काम करने के साथ-साथ बिना प्रयास के सारा दिन सीटी बजा सकता है. अगर यह सच है तो हम जोसेफाइन के गले के तथाकथित कौशल को अस्वीकृत कर सकते हैं. . . लेकिन यह तो एक पहेली बन गयी है, क्योंकि उसके गले में तो असाधारण प्रभाव है.

फिर भी वह एक तरह की सीटी ही तो बजाती है. अगर आप उससे कुछ दूर बैठकर सुनें और परखें तो आपको एक साधारण सीटी की ही आवाज सुनाई देगी, जो और आवाजों से इतनी ही भिन्न होगी कि वह दूसरों की अपेक्षा अधिक नाजुक या मंद होगी. और अगर आप उसके सामने बैठकर सुनें तो आपको वह मात्र सीटी बजाना ही नहीं लगेगा. उसकी कला को समझने के लिए उसे सुनना ही काफी नहीं होता, देखना भी जरूरी होता है. अगर वह भी आमतौर पर रोज ही सीटी बजाने वालों की तरह सीटी बजाती, तो फिर एक बात पर सबसे पहले ध्यान दिया जाना जरूरी है कि वह अपने साधारण कार्य में से कुछ ऐसा कर रही है जो उसे विशिष्ट प्रदर्शन बना रहा है. एक सुपारी को तोड़ देने से कोई दावत नहीं होती. भला कोई सुपारी तोड़ने की आवाज से श्रोताओं का मनोरंजन करने की हिम्मत कर सकता है! तो फिर इसे भी हम सामान्य ढंग से सुपारी तोड़ना तो नहीं कह सकते. या कहें कि यह मामला तो सुपारी तोड़ने का ही है. पर हम सुपारी तोड़ने की कला को अनदेखा कर देते हैं, क्योंकि हम खुद भी इस कला में निपुण हैं और इस नवागंतुक ने इसके वास्तविक स्वरूप का दर्शन कराया है. हालांकि हममें से कई इस कला में अधिक निपुण हैं.

▣

जोसेफाइन के गाने के साथ भी लगभग यही बात है. उसके जिस गुण की हम तारीफ करते हैं, अपने में उसी गुण की हम तारीफ नहीं करते. इस प्रकार मैं कह सकता हूं कि वह भी हमसे सहमत है. एक बार मैं भी वहीं था, और आमतौर पर ऐसा होता ही रहता है, एक आदमी ने उसका ध्यान चारों ओर के आमतौर पर सीटी बजाने की ओर दिलाया. ऐसा उसने बड़ी विनम्रता से किया था, पर जोसेफाइन के लिए इतना ही काफी था. एक ऐसी कटु और उद्धत मुस्कान उसने ओढ़ ली जो मैंने पहले कभी नहीं देखी थी. वह दिखने में तो इतनी नाजुक थी, पर उस समय बहुत अश्लील लगने लगी थी. फिर शीघ्र ही उसे अपनी तीव्र संवेदन शक्ति से उपजी स्थिति का आभास हो गया और उसने खुद पर नियंत्रण कर लिया. किसी भी कीमत पर वह अपनी कला और सामान्य सीटी बजाने में किसी तरह से संबंध को स्वीकार नहीं करती. जो लोग इससे असहमत हैं उनके लिए उसके मन में निंदा भाव और एक अव्यक्त घृणा है, विरोध के प्रति सामान्य दंभ नहीं. इसके लिए तो मेरे मन में भी पूरी सहानुभूति नहीं है. मैं भी उसका और लोगों की अपेक्षा कम प्रशंसक नहीं हूं, पर उसे मात्र प्रशंसा नहीं चाहिए, उसे तो उस स्तर पर प्रशंसा चाहिए जो उसने खुद निर्धारित कर रखा है. सामान्य प्रशंसा से वह अप्रभावित रहती है. जब आप उसके पास बैठते हैं तो उसे समझते हैं, विरोध के लिए दूरी आवश्यक है. आप जानते ही हैं कि उसका सीटी बजाना, मात्र सीटी बजाना नहीं है.

चूंकि सीटी बजाना तो हमारी एक लापरवाही की आदत है. आप कह सकते हैं कि जोसेफाइन को सुनते हुए भी लोग सीटी बजाते होंगे, क्योंकि उसकी कला से हम खुश होते हैं और खुश होकर सीटी बजाते हैं. पर उसके श्रोता लोग सीटी नहीं बजाते. वे मूषकोचित शांति के साथ बैठे रहते हैं, जैसे हम भी उसी शांति के एक हिस्सेदार हों जिसकी हमें तलाश है, जहां से हमारी सीटी बजाने की जरा भी इच्छा काबू में आ जाती है और हम कोई आवाज नहीं करते. क्या उसका गाना ही हम पर जादू डाल देता है, या यह रहस्मय शांति ही हमारी मंद, नन्हीं आवाज को रोक लेती है. एक बार जब जोसेफाइन गा रही थी तो एक नन्हीं बच्ची अनजाने में ही सीटी बजाने लगी. यह आवाज बिल्कुल वैसी थी, जैसी हम जोसेफाइन से सुन रहे थे. हमारे सामने एक ओर तो कई बार की रिहर्सल के बाद आजमायी हुई सीटी की आवाज थी और दूसरी ओर श्रोताओं के बीच में से एक बच्ची की सहज सीटी. हमारे लिए दोनों के बीच भेद करना मुश्किल हो रहा था. फिर तत्क्षण हमने उस बीच में बाधा डालने वाली आवाज को अपनी सिसकारियों और झिड़कियों से रोक दिया, हालांकि ऐसा करना कतई जरूरी नहीं था, क्योंकि यह बेचारी तो खुद ही डर और शर्म से चुपके-से खिसक जाती. जबकि जोसेफाइन अपने विजयी सुरों के आलाप लेती हुई आपे से बाहर हो गयी थी. वह अपने स्वर को अपनी क्षमताभर ऊंचा उठाती हुई अपने हाथों को फैलाते हुए गाने लगी थी.

हमेशा ऐसा ही होता कि कोई छोटी-सी बात, कोई आकस्मिक घटना, फर्श के चरमराने की आवाज, दांत कटकटाने की आवाज, अंधेरा घिर आना उसे व्यग्र कर देते थे और वह अपने गाने का स्वर तेज कर देती थी. वह समझती थी कि वह बहरे कानों के लिए गा रही है. उसके लिए उत्साह और करतल ध्वनि की कोई सीमा न रहती, पर असली हमदर्दी को स्वीकार करना तो उसने सीखा ही नहीं. हरेक बाधा का वह स्वागत करती, जहां भी उसके गाने की रवानगी में विघ्न डालने के लिए बाहर से कोई बाधा पड़ती तो जरा से प्रयास से उस पर काबू पाने के लिए, या कभी बिना प्रयास के, बस, उसके सामने डटकर ही वह लोगों को चेता देती, या कहें कि उन्हें सबक देती कि वे उसे केवल समझें ही नहीं, उसका आदर भी करें.

और अगर एक छोटी-सी घटना ही उसका इतना काम कर देती थी तो बड़ी घटनाएं क्या न करतीं. हमारा जीवन तो काफी आशंकाओं से भरा रहता है. रोज ही कई आश्चर्य, आशंकाएं और आतंक हमारे सामने मुंह बाये खड़े रहते हैं. अकेले रहकर इनसे निपटना किसी के भी बस में नहीं है. इसलिए रात-दिन हमेशा ही अपने साथियों के सहारे की जरूरत होती है. पर इसके बावजूद कई बार कठिनाई आ जाती है. दो लोगों का बोझ भी कई बार हजारों से नहीं संभलता. इस पर जोसेफाइन तो कहती कि उसका आखिरी वक्त आ गया है. हालत उसकी इतनी नाजुक कि कंपनों से ही कांप जाये, इसलिए हर कोई उसके बारे चिंतित रहता है. ऐसा लगता है जैसे उसने अपनी सारी ताकत अपने गानों पर ही केंद्रित कर दी है और जिस भी काम से गाने का सीधा संबंध नहीं है, वहां से उसने अपनी सारी ताकत वापस खींच ली है. लेकिन जब भी वह ऐसी हरकत करती है, हम लोग,

जो उसके विरोधी माने जाते हैं, यह कहने से कभी नहीं चूकते कि वह तो सीटी भी नहीं बजा सकती. उसे एक गाने के लिए नहीं—क्योंकि गाना तो हम उसे कह ही नहीं सकते—बल्कि हमारी सीटी से मिलती-जुलती कोई चीज करने के लिए इतनी भयानक शक्ति लगानी पड़ती है. पर धीरे-धीरे हम भी भीड़ की भावनाओं में बहने लगे, और उस भीड़ में बदन से बदन छीलते हुए सांस रोके उसे सुनने लगे.

अपने चारों ओर हम लोगों की भीड़ इकट्ठी करने के लिए जोसेफाइन को ज्यादा कुछ भी नहीं करना पड़ता. बस, एक जगह खड़े होकर सिर को पीछे खींचकर मुंह आधा खोले, आंखें ऊपर किये एक ऐसी स्थिति में आ जाना काफी रहता था कि लोगों को यह संकेत मिल जाये कि वह गाना शुरू करने वाली है. वह जहां चाहती है, भीड़ इकट्ठी कर सकती है. कोई जरूरी नहीं कि वह जगह-जगह दूर-दूर से दिखाई दे सके. कहीं भी, जहां वह तरंग में आ जाये, वहीं जगह बन जाती थी. वह गाने वाली है, यह खबर क्षण भर में उड़ जाती और जत्थे के जत्थे उमड़ पड़ते. अब भी कभी-कभी बाधाएं आतीं. जोसेफाइन को उस समय गाना सबसे अच्छा लगता जब स्थिति अधिक गड़बड़ होती, कई चिंताएं होतीं. खतरे के कारण हमें चक्करदार रास्तों का सहारा लेना पड़ता और चाहते हुए भी हम उतनी जल्दी इकट्ठे न हो पाते जितनी जल्दी जोसेफाइन चाहती. इस पर वह बड़ी अकड़ से अपर्याप्त श्रोताओं के सामने कुछ देर के लिए खड़ी रहती—फिर एकदम बिफर जाती, अपने पांव पटकती हुई, निर्लज्जता से गालियां बकती हुई सचमुच काटने को दौड़ती. पर ऐसे व्यवहार से भी उसकी प्रतिष्ठा पर कोई फर्क न पड़ता. उसकी उस अतिशय अपेक्षा का विरोध करने के बजाय लोग उन्हें पूरा करने का प्रयास करने लगते. सुनने वालों को बुलाने के लिए संदेशवाहक भेजे जाते. हां, उसको इस बात का आभास भी न होने दिया जाता कि उसके लिए क्या किया जा रहा है. सड़कों पर जगह-जगह संतरी खड़े कर दिये जाते, जो आते हुए लोगों को तेज-तेज चलने के लिए संकेत करते. यह तब तक चलता रहता जब तक कम से कम इतने लोग इकट्ठा न हो जाते, जितने जोसेफाइन के लिए संतोषजनक होते.

▣

जोसेफाइन के लिए यह प्रयास कौन-सी शय उनसे करवाती है? यह सवाल भी जोसेफाइन के गाने के बारे में पूछे गये पिछले सवाल से कम कठिन नहीं है और उससे संबद्ध भी है. इन दोनों को मिलाकर एक सवाल भी बनाया जा सकता है, काश यह स्वीकार किया जा सकता कि जोसेफाइन के प्रति लोगों की यह श्रद्धा बिलाशर्त उसके गाने के कारण है. पर मामला इतना सरल नहीं है. हम लोगों में बिलाशर्त श्रद्धा होती ही नहीं. हम लोग और बातों के अलावा धूर्तता से भी प्यार करते हैं, बिना किसी द्वेष के, यह तय है. इस तरह के लोग बिलाशर्त श्रद्धा कैसे रख सकते हैं. जोसेफाइन खुद भी महसूस करती है कि अपने दुर्लभ गले की पूरी ताकत के साथ वह किसके विरुद्ध लड़ाई लड़ रही है.

ऐसी सामान्यीकृत धारणा बनाकर हम शायद कुछ ज्यादा ही आगे बढ़ गये हैं. हमारे लोग जोसेफाइन के प्रति श्रद्धा जरूर रखते हैं, हां वह बिलाशर्त नहीं होती. उदाहरण के लिए, वे जोसेफाइन पर हंस नहीं सकते. यह बात स्वीकार की जा सकती है कि जोसेफाइन में कई ऐसी बातें हैं जिन पर हंसा जा सकता है, और ऐसी बात भी नहीं कि हम लोगों को ठहाके लगाने की आदत नहीं है. अपनी सारी कंगाली के बावजूद, हम कह सकते हैं कि ठहाके तो हमारे मुंह से निकलने को तैयार बैठे रहते हैं. फिर भी हम जोसेफाइन पर नहीं हंसते. कई बार मुझे ऐसा लगा कि हमारे लोग जोसेफाइन के साथ अपने संबंधों को इस प्रकार मानते हैं कि वह कमजोर जीव है और उसे सुरक्षा चाहिए. फिर वह अपने गाने की क्षमता के कारण महत्वपूर्ण भी है और इसीलिए उसकी देखभाल की जानी चाहिए. पर क्यों? इसका कारण किसी के भी दिमाग में स्पष्ट नहीं है. पर यह बात सबके दिमाग में बैठी हुई है.

कुल मिलाकर जोसेफाइन के प्रति लोगों का व्यवहार उस पिता जैसा था जिसके लड़के के हाथ को लकवा मार गया है. कोई यह भी सोच सकता है कि हमारे लोगों को ऐसे पैतृक कर्तव्यों की आदत नहीं है, पर इस मामले में वे ऐसा करते हैं. "तुम जो मेरी रक्षा कर रहे हो उसकी कीमत तो यह पुराना गाना नहीं हो सकता!" जोसेफाइन कहती. उसका यह प्रतिवाद सचमुच का विरोध न होकर बिल्कुल बचकाना होता था. एक बच्चे के हठ जैसा और पिता का काम होता है कि इन बातों पर कोई ध्यान न दे.

▣

लेकिन इसके अलावा भी कुछ ऐसा है जिसके कारण हम लोगों और जोसेफाइन के बीच संबंधों की व्याख्या करना कठिन हो जाता है. कहा जा सकता है कि जोसेफाइन इसके ठीक विपरीत सोचती है. उसका विश्वास है कि वह लोगों की रक्षा कर रही है. जब हम लोग राजनीतिक या आर्थिक मामलों में गलत राह पर चलने लगते हैं तो उसका गाना हमें बचा लेता है. गाना अगर बुराई को दूर नहीं खदेड़ पाता, तो कम से कम उससे मुकाबला करने की शक्ति तो देता ही है. वह अपनी बात को इस तरह के शब्दों में नहीं रखती, वह बहुत कम बोलती, वह गप्पियों के बीच चुप रहती, पर यह बात उसकी आंखों में चमकती, उसके बंद होंठों से सुनाई देती. हममें से कम ही लोग अपने होंठ बंद रख पाते हैं. जब कभी हमें कोई बुरी खबर मिलती—और बुरी खबरें तो आती ही रहती थीं—झूठी-सच्ची—तो वह एकदम उठ खड़ी होती, जबकि आमतौर पर वह उदासीन-सी बैठी रहती. वह उठकर अपनी गर्दन को तानकर अपने साथियों के सिरों के ऊपर से देखती, जैसे तूफान आने से पहले गडरिया अपनी भेड़ों को देखता है. यह सच है कि वह हमारी रक्षा नहीं करती, न वह हमें शक्ति देती है. किसी के लिए भी यह दिखावा करना कि वह हमारा रक्षक है, बहुत सरल है, हम लोगों को तो दुखों की आदत है ही. अपनी रक्षा करने में ही हम सक्षम नहीं हैं, पर निर्णय जल्दी लेते हैं. मौत से हम अच्छी तरह परिचित हैं—इसलिए किसी भी घटना के बाद कोई भी यह दिखावा कर सकता है कि उसने हम लोगों की रक्षा की है, हालांकि उसने खुद ही अपनी जान चाहे बड़ी मुश्किल से कई लोगों के उत्सर्ग की कीमत पर बचायी हो. खैर,

यह बात तो इतिहासकारों के लिए खोज का विषय है—आमतौर पर हम ऐतिहासिक खोजों पर ध्यान नहीं देते. फिर भी यह सच है कि आपातकाल में हम और समय की अपेक्षा जोसेफाइन की आवाज को ज्यादा ध्यान से सुनते हैं. जितना बड़ा खतरा हमारे सिरों पर मंडराता है, हम ज्यादा शांत हो जाते हैं, जोसेफाइन की आधीनता के प्रति अधिक स्वीकार भाव हमारे मन में पैदा हो जाता है. हम साथ-साथ आकर एक दूसरे के साथ सटकर बैठने लगते हैं, विशेष रूप से उस समय जब किसी आपत्ति ने हमें एक-दूसरे से जुदा कर दिया हो. जोसेफाइन आकर इस बात को भूल जाती कि—युद्ध से पूर्व एक प्याला शांति सभी साथ-साथ पीते हैं: यहां पर उसकी कला इतनी महत्वपूर्ण न होती, जितना जनता का इकट्ठा होना. ऐसी सभा का, जहां सीटी की मंद आवाज के सिवा और कुछ न सुनाई देता, उस समय हमारे लिए इसलिए भी महत्व होता कि उतना समय हम फालतू गप्पों में बरबाद न करें.

यद्यपि हम लोग अन्य कई चीजों को लेकर चिंतित रहते, फिर भी उसके गाने को सम्मान देने के लिए शांति छायी रहती. कई श्रोताओं की गर्दनें तो पड़ोसी के कोट के अंदर घुसी रहतीं. इसलिए लगता है, जोसेफाइन व्यर्थ ही अपने को थका रही है. फिर भी ऐसा कुछ है—जिससे इनकार नहीं किया जा सकता—जो जोसेफाइन की सीटी हमारे भीतर अनायास ही चला जाता है. जैसे-जैसे लोगों की शांति गहराती वैसे-वैसे सीटी की आवाज तेज होती चली जाती. और ऐसा लगता कि सारे लोगों की ओर से प्रत्येक व्यक्ति तक एक संदेश आ रहा है. गंभीर शांति के बीच जोसेफाइन की सीटी की पतली आवाज आक्रामक दुनिया के हंगामे में हमारे लोगों की अनिश्चत स्थिति जैसी ही होती थी. इतनी मेहनत करके भी जोसेफाइन के गले से निकलती बहुत ही मंद आवाज हम पर थोप दी जाती. अगर हम लोगों में कोई सचमुच का प्रशिक्षित गायक होता तो हम ऐसे किसी बेहूदा प्रदर्शन में जाते ही नहीं. क्या जोसेफाइन नहीं जानती कि हमारा उसका गाना सुनने के लिए जाना उसके गायिका होने का प्रमाण नहीं है. उसे इसका आभास जरूर होगा, तभी तो वह बिना इस बात की परवाह किये कि हम कुछ सुन भी रहे हैं, अपने आभास को दबाने के लिए गाती और सीटी बजाती चली जाती है.

▣

पर और भी कई बातें हैं जिनसे उसे तसल्ली मिल सकती है. एक तरह से हम उसे सचमुच सुनते हैं. वैसे ही जैसे किसी प्रशिक्षित गायक को सुनते. जोसेफाइन में ऐसे प्रभाव भी हैं जो वह गायक कोशिश करने पर भी पैदा नहीं कर सकता. और उसका कारण है कि जोसेफाइन के साधन इतने अपर्याप्त नहीं हैं. निस्संदेह इसका श्रेय हमारी जीवन-पद्धति को ही जाता है.

हम लोगों में यौवन होता ही नहीं, बचपन भी अल्पकालिक होता है. यह सच है कि नियमित रूप से ऐसी मांगें रखी जाती हैं कि बच्चों को कुछ विशेष आजादी, विशेष सुरक्षा दी जाये. उन्हें थोड़ा निश्चित रहने दिया जाये, ताकि उनमें थोड़ी चपलता आ सके. थोड़ा उन्हें खेलने दिया जाये. उनके इस अधिकार का सम्मान किया जाये और उन्हें प्रोत्साहित किया जाये. ऐसी

मांगें जब भी रखी जातीं, सभी उन्हें स्वीकार कर लेते. उन्हें पूरा करने के प्रयास भी किये जाते, पर जल्दी ही फिर से पुराने नियम लागू हो जाते. हमारा जीवन ही कुछ ऐसा हो गया है कि कोई बच्चा जब इधर-उधर दौड़ने लगता है और चीजों को पहचानने लगता है तो उसे बड़ों की ही तरह अपनी देखभाल स्वयं करनी पड़ती है. आर्थिक कारणों से हम एक-दूसरे से काफी दूर-दूर बसते हैं. हमारे आर्थिक स्रोत विपुल हैं. पर सभी स्थानों पर खतरे हमारे इंतजार में रहते हैं, जिनका हम अनुमान भी नहीं लगा पाते. अस्तित्व के इस संघर्ष में हम अपने बच्चों की ओर ध्यान नहीं दे पाते. अगर हम ऐसा करने लगें तो हम उन्हीं की मौत को जल्दी बुला लेंगे. इस निराशाजनक स्थिति को संतुलित के करने लिए एक सुखद स्थिति भी है—वह है हमारी जाति की प्रजननशीलता.

▣

हमारी एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी के कष्टों को दूर करने में लगी रहती है, इसलिए बच्चों को बच्चा बना रहने का समय ही नहीं रहता. और जातियां अपने बच्चों की सावधानी से देखभाल करती हैं. उनके लिए स्कूल खोलती हैं, उन स्कूलों में वही बच्चे रोज भेजे जाते हैं और उस जाति का भविष्य वही बच्चे हैं. हमारे यहां कोई स्कूल नहीं है. पर हमारी जाति में थोड़े ही अंतराल में बच्चों की एक असंख्य संख्या पैदा हो जाती है. जब तक हमारे बच्चे सीटी बजाना नहीं सीख लेते सिर्फ चिंचियाते और तुतलाते हैं. जब तक दौड़ना नहीं सीख लेते, इधर-उधर लड़खड़ाते हुए चलते हैं. ये बच्चे हर बार नये आते हैं. स्कूल के बच्चों की तरह नहीं जो कई दिन तक लगातार आते रहते हैं. बच्चों के आगमन की यह धारा कहीं नहीं टूटती. इसका कोई अंत नहीं होता. एक बच्चा जब तक दिखा ही कि वह बड़ा हो जाता है और उसके पीछे और नये बच्चे इतनी तेजी से आते रहते हैं कि उन्हें अलग से पहचानना तो संभव ही नहीं होता. यह सच है कि यह कितना ही आनंदप्रद क्यों न हो और इसके लिए दूसरे हमसे कितनी ईर्ष्या क्यों न करें, पर यह भी सच है कि हम अपने बच्चों को असली बचपन नहीं दे पाते. और इसके अपने परिणाम होते हैं. हमारे लोगों में एक प्रकार का अप्रत्याशित, अनुन्मूलनीय बचपना व्याप्त हो जाता है; इसमें जो अच्छाई है, खतरे को तत्क्षण भांप जाने की क्षमता, यह उसके ठीक विपरीत होता है. हम बिल्कुल मूर्खों-सा आचरण करने लगते हैं, बिल्कुल बच्चों की तरह मूर्खतापूर्ण, गैरजिम्मेदार हरकतें करते हैं...वह भी बिल्कुल ओछे आनंद के लिए. हमारे लोगों के इस बचपने से भी शुरू में जोसेफाइन ने काफी लाभ उठाया.

हमारे लोग केवल बचकाने ही नहीं हैं, बल्कि एक तरह से हम लोग असमय बूढ़े हो गये हैं. बचपन और आयु हम पर उस तरह नहीं आते जैसे और लोगों पर आते हैं. हम जवान नहीं होते. एकदम बड़े हो जाते हैं और फिर हम बहुत समय तक बड़े ही रहते हैं और इस स्थिति से उत्पन्न थकान और निराशा हमारे लोगों के स्वभाव पर एक घिसटन छोड़ जाते हैं. इसकी उत्तेजना, इसकी भावसमाधि हमारी नीरसता के अनुकूल नहीं पड़ते. हम सीटी बजाकर ही अपने को संतुष्ट कर लेते हैं. यहां-वहां जरा-सा सीटी बजा लेना ही हमारे लिए काफी होता है.

कौन जाने कि हमारे बीच भी संगीत की कोई प्रतिभा हो. अगर होती भी तो हमारे लोगों की आदत उसे उभरने से पहले ही दफन कर देती. जबकि दूसरी ओर जोसेफाइन, जितना चाहे सीटी बजा सकती है (या गा सकती है, या जो भी वह इसे कहना चाहे) इससे हमें कोई बाधा नहीं पहुंचती, बल्कि यह हमारे अनुकूल है. उसमें जो भी संगीत है, उसका चाहे लेशमात्र ही उसमें शेष रहे, संगीत की एक परंपरा उसमें सुरक्षित रहेगी.

पर हमारे लोग, जैसे भी वे हैं, जोसेफाइन से इससे कुछ ज्यादा ही प्राप्त कर लेते हैं. उसकी संगीत सभाओं में, विशेष रूप से निराशा के समय में कुछ युवा लोग ही, जो उसके गाने में किसी गाने की तरह ही रुचि लेते हैं, वे उसके होंठों की थिरकन को, उसके खूबसूरत दांतों के बीच से निकलती हवा को बड़े आश्चर्य से देखते और जो आवाज वह पैदा करती, उसके विस्मय से बेसुध हो जाते, जबकि बाकी लोग अपने ही में सिमटे रहते. यहां पर अपने संघर्षों के बीच के छोटे अंतरालों के दौरान हमारे लोगों को कई तरह के सपने आते. जैसे, उनके शरीर के अवयव ढीले पड़ गये हों, जैसे बहुत देर से परेशान रहने के बाद अपने समुदाय का एक विशाल गर्म विस्तर मिल गया हो, जिस पर वह आराम कर सकें और अपने को ढीला छोड़ सकें. इन सपनों के बीच में जोसेफाइन के सुर-दर-सुर झरते, जिन्हें वह 'मोती-समान' बताती और हम इसे यतिभंग कहते. पर कुछ भी हो, यही हम लोगों के लिए सही स्थान होता, जहां हमें थोड़ी देर रुकने का मौका मिल जाता था. इसमें थोड़ा हमारे अल्पकालिक बचपन का भी हाथ होता है, और थोड़ी खोयी हुई खुशियों का, जो हमें कभी वापस नहीं मिलेंगी. इन सब भावनाओं की अभिव्यक्ति लोग सुस्पष्ट आवाज में नहीं भी करते, बल्कि धीरे-से, फुसफुसाहटों में, गोपनीयता से करते हैं. बेशक यह भी एक तरह का सीटी बजाना ही होता है, क्यों न हो? सीटी बजाना तो हम लोगों की रोजाना की भाषा है, कई लोग जीवन भर सीटी बजाते रहते हैं, पर वे इसे जानते नहीं जबकि यहां जीवन के सारे बंधनों से सीटी बजाने को मुक्त रखा गया है और इससे हमें भी कुछ देर के लिए मुक्ति मिल जाती है. इसके अभ्यास के बिना हमारा काम चल भी नहीं सकता.

▣

इस दृष्टि से जोसेफाइन का यह दावा कि वह हमें नयी शक्ति देती है आदि आदि, कहीं भी सत्य सिद्ध नहीं होता. कम से कम सामान्य आदमी के लिए, उसके चमचों की बात और है. "इसकी दूसरी व्याख्या क्या हो सकती है?" वे लोग बड़ी बेशर्म ढिठाई से कहते, "श्रोताओं की इतनी बड़ी संख्या क्या इसका प्रमाण नहीं है, विशेष कर जब खतरा इतने निकट हो और खतरे को टालने के लिए उचित सावधानियां बरतने से प्रयास में कई बाधाएं आ रही हों." दुर्भाग्य से यह अंतिम बात सही है, पर इसके लिए जोसेफाइन को कोई श्रेय नहीं जाता. जरा उस समय का भी तो खयाल कीजिए, जब जोसेफाइन के श्रोताओं की विशाल भीड़ पर दुश्मन अचानक हमला कर देता है, तब हमारे लोगों को मरता हुआ छोड़कर जोसेफाइन जो इस सबके लिए जिम्मेदार है, क्योंकि उसकी सीटी ही दुश्मन को आकर्षित करती है—अपने रक्षकों से रक्षित, पलक झपकते ही सुरक्षित स्थान पर पहुंच जाती है. इसके बावजूद जोसेफाइन जहां भी और जिस भी समय गाने को तैयार होती है, लोग दौड़े-दौड़े आ जाते हैं. यहां पर तर्क दिया जा सकता है कि जोसेफाइन करीब-करीब कानून से परे है, वह हमारे समुदाय को खतरे में डालने का जोखिम उठाकर भी जो चाहे कर सकती है, उसका कोई दोष उस पर नहीं लगाया जा सकता. यदि ऐसी बात है तो जोसेफाइन का दावा समझ में आ जाता है. उसे दी गयी इस आजादी से, उसके लिए स्वीकृत इस असाधारण देन से, एकमात्र उसी को मिले कानून के उल्लंघन के अधिकार से एक बात की पुष्टि तो होती है कि लोग जोसेफाइन को समझते नहीं हैं, जैसा कि वह आरोप लगाती है कि वे उससे, उसकी कला से चमत्कृत हैं, पर अपने-आपको उसके योग्य नहीं मानते, उसे अपनी समझ से परे मानते हैं, इसलिए उसके व्यक्तित्व और उसकी इच्छाओं को कानून के क्षेत्र से बाहर मानते हैं. ठीक है, पर यह बात पूरी तरह से सही नहीं है. लोग व्यक्तिगत रूप से चाहे जोसेफाइन के प्रति आसानी से समर्पित हो जाते हों, पर समाज के रूप में वे किसी के सामने भी बिलाशर्त समर्पित नहीं होते, उसके सामने भी नहीं.

▣

काफी समय पहले से, संभवतः अपने कलाकार जीवन के प्रारंभ से ही जोसेफाइन अपने गाने के कारण दैनंदिन के काम में छूट पाने के लिए लड़ती रही है. उसकी मांग थी कि उसे रोज की रोटी कमाने और अस्तित्व के लिए आम संघर्ष में हिस्सा लेने की जिम्मेदारी से मुक्ति मिलनी चाहिए और यह जिम्मेदारी उसकी ओर से पूरे समाज को सौंप दी जानी चाहिए. कोई उत्साही व्यक्ति—जहां उत्साहियों की कमी नहीं है—इस मांग के मात्र चलन के विरुद्ध होने के प्रतिवाद में कह सकता है कि ऐसी मांग रखने के लिए आध्यात्मिक प्रवृत्ति की आवश्यकता है और इसका आंतरिक औचित्य है. पर हमारे लोगों के निष्कर्ष कुछ और हैं और वे इस बात से कतई इनकार करते हैं. वे उस मान्यता को अस्वीकृत करने की भी ज्यादा चिंता नहीं करते, जोसेफाइन का तर्क होता है, काम के दबाव से उसकी आवाज पर बुरा प्रभाव पड़ता है. हालांकि काम करने के दबाव से गाने के दबाव का कोई सीधा संबंध नहीं है, पर इससे उसे गाने के बाद पर्याप्त आराम नहीं मिल पाता और वह फिर से गाने के लिए शक्ति नहीं बटोर पाती. उसे अपनी पूरी शक्ति खर्च कर देनी पड़ती है और फिर इन हालत में वह अपनी पूरी क्षमता तक कभी नहीं पहुंच पाती. लोग उसके तर्क दिलचस्पी से सुनते, पर उन पर ध्यान जरा भी नहीं देते. हमारे लोग कभी तो जरा-सी बात पर विचलित हो जाते हैं और कभी बड़ी से बड़ी बात भी उन्हें विचलित नहीं कर पाती. उनके इनकार कई बार इतने निश्चित होते कि जोसेफाइन भी चकरा जाती. लगता कि उसने हार मान ली है. तब वह अपने हिस्से का पूरा काम करती. जितना अच्छा गा सकती, गाती, पर कुछ ही समय के लिए, फिर नयी शक्ति के साथ वह अपनी लड़ाई छेड़ देती. इस काम के लिए तो लगता कि उसकी शक्ति अनंत है.

अब तो यह स्पष्ट ही हो गया है कि जोसेफाइन सचमुच जो

लघुकथा

परीक्षा

▣ फ्रंज काफ्का

मैं नौकर हूं. परंतु मुझे कोई काम नहीं दिया जाता. मैं डरपोक हूं और आगे बढ़ने से कतराता हूं. वस्तुतः मैं दूसरों के समकक्ष भी नहीं हो पाता. परंतु यह मेरे बेकार रहने का तो एक कारण है. यह भी मुमकिन है कि मेरी बेचारगी का इससे संबंध ही न हो. मुख्य कारण तो यह है कि मुझे काम करने का बुलावा ही नहीं आता. दूसरों को जिन्होंने मुझसे भी कम कोशिश की थी, उन्हें बुलावे आते रहे. वास्तव में उन्हें शायद बुलवाये जाने की इच्छा भी नहीं, जबकि मैंने कम से कम कई बार इसकी उत्कट इच्छा की थी.

मैं नौकरों के हॉल में अपने बिछौने में दुबका हुआ छत की कड़ियां तकता, सोता, सो कर जागता और फिर सो जाता. अक्सर मैं शराबखाने (जहां खट्टी बियर मिलती है) तक चलकर जाता हूं. कई बार मैंने विरक्त होकर अपना गिलास उड़ेल दिया था, परंतु तब भी मैं यहां फिर चला जाता हूं.

मुझे यहां बैठना अच्छा लगता है, क्योंकि छोटी-सी बंद खिड़की के पीछे, देखे जाने की संभावना से मुक्त, मैं छिपकर अपने घर की खिड़कियां देख सकता हूं. यों यहां से कुछ अधिक दिखता नहीं. जहां तक मेरी जानकारी है, केवल गलियारे की खिड़कियां ही सड़क पर से दिखती हैं और जो संभवतः मुख्य भवन के गलियारे की नहीं है. यह भी हो सकता है कि मैं गलती पर होऊं. परंतु कभी किसी ने, मेरे पूछे बिना ही, ऐसा बताया था. और इस ओर के अग्रभाग से यही भाव होता है. खिड़कियां तो कभी-कभार ही खोली जाती हैं और उन्हें खोलने वाला प्रायः कोई नौकर होता है, जो थोड़ी देर जंगले से झुककर इधर-उधर झांक लेता है. इससे पता चलता है कि ये वही गलियारे हैं, जहां कोई अचानक आकर ताक-झांक करते हुए उसे पकड़ नहीं सकता. सच तो यह है कि मैं नौकरों से व्यक्तिगत रूप से परिचित ही नहीं. स्थायी नौकर ऊपर के किसी कमरे में सोते हैं न कि मेरे कमरे में.

एक बार जब मैं शराबखाने में पहुंचा तो मैंने पाया कि एक अन्य ग्राहक मेरी 'प्रेक्षण-चौकी' पर बैठा हुआ है. मैं उसकी ओर ध्यानपूर्वक देखने का साहस न कर, मुड़कर जाने ही वाला था कि तभी ग्राहक ने मुझे आवाज लगाई और मैंने पाया कि वह भी कोई नौकर है, जिसे मैंने एक बार कहीं देखा तो था लेकिन उससे बातचीत नहीं की थी.

"भागे क्यों जाते हो? आओ, बैठो! मेरी ओर से एक जाम पियो!" मैं बैठ गया. उसने मुझसे अनेक प्रश्न पूछे, जिनका उत्तर मैं नहीं दे सका. दरअसल, मुझे उसके सवाल समझ ही नहीं आये थे. हारकर मैंने कहा, "शायद तुम्हें अब न्योता देने पर दुख हो रहा होगा. इसलिए मुझे अब जाना ही चाहिए!" मैं उठने ही लगा था कि उसने अपना हाथ बढ़ाकर मुझे बैठा लिया, "यहीं ठहरो!" उसने कहा, "यह तो एक परीक्षा थी. जो प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता, परीक्षा में वही पास होता है!" □

अनुवाद : राजेंद्र बोहरा

कुछ चाहती, वह वह नहीं होता, जो वह शब्दों में कहती. वह सम्मान की पात्र है, वह काम से मुंह नहीं मोड़ती, किसी भी काम से जी चुराना हम लोगों को आता ही नहीं. अगर उसकी मांग मान भी ली जाती है, तब भी वह उसी तरह रहेगी, जैसे रहती आयी है. उसका काम उसके गाने के आड़े नहीं आयेगा. और न उसके गाने में ही कोई सुधार होगा. वह तो सिर्फ इतना चाहती है कि उसकी कला ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचे, उसे स्थायी मान्यता मिले, जिस पर कभी कोई प्रश्नचिह्न न लगे और उसे अभूतपूर्व माना जाये. और चीजें तो सब उसकी पहुंच में ही लगती हैं, पर उसका यह दुराग्रह समझ में नहीं आता. शायद उसे शुरू से ही अपनी लड़ाई किसी और तरह से छेड़नी चाहिए थी, शायद उसे खुद ही लगता हो कि उसका तरीका गलत है. पर अब वह पीछे नहीं हट सकती, पीछे लौटना तो खुद से गद्दारी करना होगा. अब तो उसे अपने दावे पर अड़े रहना है, चाहे मुंह की ही क्यों न खानी पड़े.

अगर सचमुच उसके कई दुश्मन हैं, जैसा कि वह साग्रह कहती है, तो उन्हें तो उस संघर्ष को देखने में बड़ा मजा आता होगा. इसके लिए उन्हें उंगली तक उठाने की भी जरूरत नहीं पड़ती होगी, पर उसका कोई दुश्मन है ही नहीं. अगर यहां-वहां कुछ पात्र उसकी आलोचना करते भी हैं तो भी उनमें से इस संघर्ष को कोई मजेदार नहीं पाता. यहीं लोग अपनी उदासीनता दिखाते हैं, अन्यथा और जगह वे इतने उदासीन नहीं होते. लोगों के इनकार और जोसेफाइन के दावे दोनों में ही क्रिया महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि लोग अपनी ही एक साथी के सामने एक पथरीली अभेद्य दीवार खड़ी कर रहे हैं. यह और भी अभेद्य तब बनती है, जब वे अपनी इस साथी के प्रति पैतृक जिम्मेदारी भी दिखाते हैं, बल्कि उससे भी अधिक.

लेकिन बात एकदम ऐसी भी नहीं है, लोगों को यह अपराध-बोध भी नहीं होना चाहिए क्योंकि जोसेफाइन के प्रति उनका आदर खरा और असली है और जोसेफाइन की मांगें इतनी व्यापक हैं कि कोई बच्चा भी कह देगा कि उनका क्या परिणाम निकल सकता है. फिर भी हो सकता है कि जोसेफाइन उन सब बातों को सोच लेती हो और फिर इनकार के दर्द में थोड़ा कड़वाहट भी भर देती हो.

इस विषय में उसके जो भी विचार हों, वह लोगों को यह

मौका ही नहीं देती कि वे उसे डराकर इस अभियान से रोकें. इन दिनों उसने अपना अभियान और भी तेज कर लिया है. अभी तक तो शब्दों को ही वह शस्त्र के रूप में प्रयोग करती थी पर अब वह दूसरे तरीकों पर उतर आयी है और उसका विचार है कि ये अधिक कारगर होंगे. पर हमारे खयाल से यह उसे और अधिक खतरों में ले जायेंगे.

लोगों का विश्वास है कि जोसेफाइन के इतने आग्रही होने का कारण है, उसकी उम्र का बढ़ना और आवाज का गिरना. इसलिए वह सोचती है कि अपनी ख्याति को प्राप्त करने के लिए अंतिम लड़ाई छेड़ने का यह उपयुक्त समय है, पर मैं ऐसा नहीं समझता. अगर यह सच है तो वह जोसेफाइन ही नहीं रहती. उसके लिए न तो कोई वृद्धावस्था है और न उसकी आवाज गिर सकती है. अगर वह मांगें रखती है तो इसका कारण कोई बाहरी परिस्थितियां नहीं है बल्कि भीतरी तर्क हैं. वह उच्चतम सम्मान तक पहुंचने का प्रयास इसलिए नहीं करती कि वह फिलहाल उससे जरा नीचे है, बल्कि इसलिए करती है कि वह उच्चतम बिंदु पर है...और अगर उसका जरा भी वश चल रहा होता तो वह और भी ऊंचे बिंदु पर जा पहुंचती.

▣

यह निश्चित है कि बाहरी कठिनाइयों के प्रति इस प्रकार की अवमानना उसे अनधिकारी तरीकों का इस्तेमाल करने से नहीं रोक सकती. उसे लगता है कि उसके अधिकारों पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं लगा सकता, इसलिए उसके सामने सवाल इस अधिकार की रक्षा करने का है, क्योंकि वह देख रही है कि ईमानदार तरीके कभी सफल नहीं होते. संभवतः इसीलिए वह अपनी अधिकारों की लड़ाई को गाने के क्षेत्र से निकालकर इस क्षेत्र में ले आयी है, उसके समर्थकों ने सभी को यह जता दिया है कि वह चाहे तो ऐसा गा सकती है कि आम लोगों की ही क्या, अपने घोर विरोधियों की तबीयत को भी चकाचक कर दे. पर जब वह अपने काम का अभियान छेड़ती है तो उसकी कहानी दूसरी ही होती है, हालांकि उसका अभियान उसके गाने से शुरू होता है, फिर भी वह इस लड़ाई को सीधे गाने के अमोघअस्त्र से नहीं लड़ रही है. इसलिए जो भी अस्त्र वह प्रयोग कर रही है वह ठीक हैं. अब चारों ओर अफवाह उड़ गयी कि अगर जोसेफाइन की मांगें नहीं मानी जातीं तो वह ललित सुरों का प्रयोग बंद कर देगी. मुझे ललित सुरों के बारे में कुछ भी पता नहीं है और मैंने जोसेफाइन के गाने में कभी ललित सुरों को लक्ष नहीं किया. पर अब तो जोसेफाइन अपने गानों में से ललित सुरों को निकाल ही रही है. कुछ ही दिनों के लिए नहीं बल्कि हमेशा के लिए. संभव है उसने इस धमकी को लागू भी कर दिया हो हालांकि मुझे उसके गाने में कोई अंतर तो नजर नहीं आया था. लोग भी उसे हमेशा की ही तरह सुनते थे और ललित सुरों के बारे में कुछ भी नहीं कहते थे. इसीलिए गाना सुनाने के बाद वह ऐसा प्रदर्शन करती जैसे ललित सुरों से संबंधित उसका निर्णय बहुत कठोर है और लोगों के विरुद्ध अचानक उठाया गया कदम है. तब वह घोषणा करती कि अगली बार वह फिर से ललित सुरों का प्रयोग करेगी. लेकिन अगली सभा में ही वह अपना निर्णय बदल देती और घोषणा कर देती कि अगर उसकी मांगों पर अनुकूल निर्णय न दिया गया तो वह ललित सुरों का प्रयोग हमेशा के लिए बंद कर देगी. लोग भी इन घोषणाओं, निर्णयों और प्रतिनिर्णयों को एक कान से सुनते और दूसरे से निकाल देते.

▣

फिर भी जोसेफाइन ने हार नहीं मानी. उदाहरण के लिए एक दिन उसने कहा कि काम करते हुए उसके पांव में चोट लग गयी है इसलिए अब उसके लिए खड़े होकर गाना मुश्किल हो गया है. और चूंकि वह बिना खड़े हुए गा नहीं सकती, इसलिए अब वह गाना छोटा कर देगी. अब वह अपने समर्थकों के कंधों का सहारा लेकर चलने लगी थी, फिर भी किसी को यकीन नहीं था कि वह अपंग हो गयी है. माना कि उसका शरीर बहुत कोमल और अतिसंवेदनशील है. पर वह है तो हममें से ही एक. और हम काम करने वाले लोग हैं. अगर हम जरा-सी खरोंच आने पर ही लंगड़ाने लगें तो कोई भी ऐसा नहीं बचेगा, जो लंगड़ाता न हो. अब वह लोगों के कंधों का सहारा लिये होती और अपने आपको आमतौर पर बहुत दयनीय दिखाती. इस पर भी लोग पहले की ही तरह उसके गाने को साभार सुनते और तारीफ करते. गाने के छोटा होने की उन्हें ज्यादा चिंता नहीं होती.

चूंकि वह हमेशा-हमेशा के लिए तो लंगड़ाती हुई नहीं चल सकती थी, इसलिए वह और तरीके अपनाने लगी. वह कहती कि वह थक गयी है. गाने के मूड में नहीं है. कमजोरी आ रही है. इस तरह हमें संगीत सभा के अलावा नाटकीय प्रदर्शन भी देखने को मिल जाता. हम देखते कि पृष्ठभूमि में जोसेफाइन के समर्थक उससे गाने की याचना करते, गिड़गिड़ाते. वह कहती कि उनकी इच्छा पूरी करने पर उसे खुशी होती, पर वह कर नहीं सकती. वे उसकी चापलूसी करने लगते और लगभग उठाकर उस जगह ले जाते, जहां उसे गाना होता. उसकी आंखों से आंसू फूटने लगते. आखिरकार, किसी तरह वह गाने के लिए खड़ी हो जाती. साफ है कि अब तक वह अपने तरकश के तीर छोड़ चुकी है. अब वह हाथों को और दिनों की तरह फैलाने की बजाय नीचे लटकाये रखती ताकि लोगों को लगे कि वे उससे नीचे हैं. फिर जब वह गाने का उपक्रम करने लगती, लगता जैसे वह गा ही नहीं पा रही है. वह अनिच्छा से सिर हिलाती और फिर फूट पड़ती. यह तय था कि इसके बाद वह अपने को काबू करती और गाने लगती. मुझे उसका गाना हमेशा की तरह अच्छा लगता. अगर किसी व्यक्ति के कान गाने की बारीकियों को समझते हैं तो वह समझ सकता है कि वह अपनी पहले दिनों की ही भावनात्मकता से गा रही है और यह गाना निश्चित रूप से अच्छा है. गाना खत्म होने पर उसके चेहरे पर पहले दिनों से कम थकान नजर आ रही थी, उसके पांव दृढ़ता से जमीन पर जमे थे. हां, लंगड़ा जरूर रही थी, पर अपने समर्थकों की किसी भी प्रकार की सहायता से इनकार करती हुई, सादर खड़ी भीड़ को अपनी ठंडी आंखों से तोलती हुई चली गयी.

यह घटना करीब दो या तीन दिन पहले ही घटी थी. ताजा

काफ्काई अंधेरे में जूझती आत्मपीड़ा

काफ्का की डायरी में 21 नवंबर, 1911 को एक भयावह स्वप्न दर्ज किया गया—"एक अर्से बाद आज सुबह मुझे फिर कलेजे के भीतर घूमते हुए चाकू की कल्पना आनंदातिरेक से भर गयी." यह स्वप्न सोते हुए नहीं, बल्कि जागृति की अतिचेतन स्थिति में देखा गया था और काफ्काई जगत में व्याप्त अंधेरे को 'भूरा' बनाती हुई वस्तुजगत की सच्चाइयों का काफ्काई विश्लेषण भी इसी अतिचेतन मनःस्थिति का प्रतिफलन है. काफ्का ने अपनी पीड़ा को मानसिक विस्तार के वृहद्तर परिप्रेक्ष्य में देखा, जाना और विद्रूप मुद्राओं में प्रस्तुत किया. यह एक ऐसा लथपथ संघर्ष है जो खत्म होने में नहीं आता और विक्षिप्त कर देने की हद तक पहुंचकर भी व्यक्ति को मथता रहता है. जब काफ्का हौले से कहता है—"सब कुछ भ्रम है. परिवार, दफ्तर, मित्र, वह गली, वह स्त्री, सब भ्रम है, जो पास खिंचता है और दूर चला जाता है. किंतु, सबसे निकट सत्य सिर्फ यह है कि मैं एक बिना खिड़की अथवा दरवाजों की एक कोठरी की दीवार से अपना सिर टकरा रहा हूं." तो क्या सचमुच एक अभिशप्त अनिवार्य अस्तित्वबोध की कराह उस 'अदृश्य' की तलाश में, बेहद पीड़ा के बावजूद, संलग्न नहीं हो जाती जो कि नहीं है, परंतु जिसे होना चाहिए? इसी की स्थिति क्रमशः चरम पर पहुंचकर सूत्र को यकायक उलट देती है—'यह सोचता है अतः मैं नहीं हूं.'

"एक चूहा है." वह कहता है, "आह! दुनिया दिन-ब-दिन छोटी होती जा रही है. पहले यह इतनी बड़ी थी कि मैं डर गया था और मैं भागता रहा, भागता रहा और दोनों ओर दीवारों को बहुत फासले पर देखकर बहुत खुश होता रहा. लेकिन ये लंबी दीवारें इतनी जल्दी समीप आती गयीं कि मैं अब आखिरी चेंबर में आ गया हूं. वहां कोने में पिंजरा है और मेरे पास उसमें जाने के सिवा कोई चारा नहीं है."

"तुम्हें सिर्फ दिशा बदल देने की जरूरत है!" बिल्ली ने कहा और उसे खा गयी.

'द ग्रेट वाल ऑव चाइना' की इस कथा में काफ्काई निष्कर्ष छिपा हुआ है कि अनबूझ गुत्थियों से भरे इस जीवन को विदीर्ण होकर, विश्वासपूर्ण अविश्वास के साथ एक मृत ईश्वर के प्रति समर्पित होना ही होगा, चूंकि प्रस्तुत विश्व की प्रत्येक भंगिमा 'सत्य' भले ही न मानी जाये पर 'आवश्यक' तो वह है ही! □

● प्रस्तुति : दिनेश शाकुल

स्थिति यह है कि वह उसी समय गायब हो गयी, जब उसे गाना चाहिए था. उसकी तलाश में सिर्फ उसके समर्थक ही नहीं, अन्य श्रद्धालु लोग भी लग गये, पर कोई फायदा नहीं हुआ. जोसेफाइन गायब हो चुकी थी. अब वह नहीं गायेगी, अब उसे गाने के लिए मनाया भी नहीं जा सकता. अब तो उसने हमें पूरी तरह से निराश कर दिया था.

अपने हिसाब में उससे कितनी बड़ी गलती हुई है. वह तो बहुत चतुर थी. फिर ऐसी गलती! कोई भी कह सकता है कि जाने से पहले उसने कुछ सोच-विचार नहीं किया. उसकी नियति ही उसे ले गयी. अब उसकी हालत को हम दुखद ही कह सकते हैं, उसने अपनी इच्छा से गाना बंद किया है. अपनी इच्छा से उसने उस ताकत को खत्म कर दिया, जो उसने लोगों का दिल जीतकर हासिल की थी. अगर वह हमारे दिलों के बारे में इतना कम जानती है तो फिर वह इतनी ताकत हासिल कर ही कैसे सकी. वह छिप गयी है और नहीं गाती. हमारे लोग चुप हैं, निराशा की तो झलक भी उनमें नहीं दिखती. वे बहुत संतुलित और आत्मविश्वासी लोग हैं, यह उनकी प्रवृत्ति है, हालांकि देखने से ऐसा नहीं लगता. वे कुछ देते ही हैं, लेते नहीं, जोसेफाइन से भी नहीं. वे अपने ही तरीके से जीते हैं.

जोसेफाइन का रास्ता तो पतन का है. जल्दी ही उसके अंतिम सुर निकलेंगे और निःशब्दता में विलीन हो जायेंगे. वह हमारे लोगों के अमर इतिहास की एक छोटी-सी घटना होगी और लोग जल्दी ही उसकी मौत से उबर जायेंगे. इसलिए नहीं कि यह हमारे लिए सरल होगा, बल्कि इसलिए कि हमारे लोग चुप्पी में घिरे नहीं रह सकते. क्या तब चुप नहीं रहते थे, जब जोसेफाइन वहां थी? क्या तब उसकी सीटी की आवाज अब उसकी यादों से अधिक तीव्र और जीवंत थी? क्या वह अपने जीवन में भी याद मात्र ही नहीं रह गयी थी? क्या जोसेफाइन के गाने के न रहने का कारण यह नहीं है कि हमारे लोग अपने विवेक का इतना बड़ा मूल्य चुकाते हैं?

इसलिए कुल मिलाकर हमने बहुत ज्यादा नहीं खोया, जबकि जोसेफाइन सारे पार्थिव दुखों से विमुक्त है और अपने विचार से अभीष्ट आत्माओं की प्रतीक्षा में लेटी हुई है. अपनी इच्छा से ही उसने समय से पहले अपने को हमारे लोगों की लोककथाओं के असंख्य नायकों में कहीं खो दिया. अब वह पूरी तरह से मुक्त हो जायेगी और अपने अन्य भाइयों की तरह भुला दी जायेगी. □

● रूपांतर : सुरेश उनियाल

काफ्का : चालीस साल लंबे अकेलेपन का दर्द

युद्धोत्तर योरोप के दमघोंट वातावरण और अकेलेपन ने काफ्का के तन-मन को पूरी तरह से जर्जर कर दिया था. प्राहा के वातावरण में वह एक विदेशी जर्मन लेखक था और जर्मनी के यहूदी विरोधी वातावरण में एक उपेक्षित यहूदी. जीवन भर इन्हीं विरोधों में जीते काफ्का का जीवन परिचय.

जीवन के आखिरी दिनों में काफ्का बोलने में भी असमर्थ हो गये. मुलाकातियों से लिख-लिखकर बात करते थे. 1924 की 2 जून को उनकी स्थिति कुछ सुधरी थी. उस दिन उन्होंने अपने कहानी संकलन **द हंगर आर्टिस्ट** के प्रूफ भी ठीक किये थे, लेकिन दूसरे दिन उनका दर्द बढ़ गया था. उन्हें इंजेक्शन लगाये गये. उस समय विक्षिप्त-दशा में अपने डाक्टर चाचा क्लोपस्टोक से, "मुझे मार डालो, नहीं तो तुम हत्यारे हो," कहते हुए विश्व-विख्यात लेखक फ्रैंज काफ्का अपने चालीस साल लंबे अकेलेपन को अलविदा कहकर हमेशा हमेशा के लिए सो गये.

काफ्का का जन्म चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राहा के एक यहूदी परिवार में 3 जुलाई, 1883 को हुआ था. इनके पिता हरमन काफ्का बिसाती सामान के थोक-विक्रेता थे. हरमन काफ्का के पिता दक्षिण बोहेमिया में एक कसाई थे. हरमन का परिवार दक्षिण बोहेमिया से आकर प्राहा में बस गया था. काफ्का की मां जूली एक दूसरे ही प्रकार के परिवार की थीं, जो विद्वान और कल्पनाशील व्यक्तियों के लिए विख्यात था.

फ्रैंज काफ्का, हरमन और जूली की प्रथम संतान थे. काफ्का के दो भाई छुटपन में ही गुजर गये और उनकी तीन बहनें इस संसार में उनसे काफी देर बाद आयीं. यही कारण था कि काफ्का का बचपन बेहद अकेलेपन में गुजरा. घर में कई अध्यापिकाओं से शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्हें जर्मन के एक स्कूल में भेजा गया. यहां पर काफ्का ने जर्मन की शिक्षा एक जर्मन की तरह से ली. अपने चेक या यहूदी होने का एहसास उन्हें काफी समय बाद हुआ.

सबसे पहले उन्हें प्राहा स्थित एक प्राइमरी स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा गया. तत्पश्चात वह ओल्ड टाउन स्क्वायर स्थित जर्मन ग्रामर स्कूल पढ़ने गये, जो प्राहा का सबसे कठोर स्कूल था. बचपन से ही कमजोर तथा सुकुमार काफ्का के चेहरे पर हमेशा गंभीरता तैरती रहती थी.

18 वर्ष की उम्र में काफ्का ने प्राहा विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया. स्कूल छोड़ने के बाद अध्ययन के लिए उन्होंने रसायन शास्त्र चुना, लेकिन पंद्रह दिन बाद अपना विचार बदल दिया और जर्मन पढ़ने लगे. जर्मन की शिक्षा समाप्त कर लेने के बाद उन्होंने कानून की पढ़ाई शुरू की. इस विषय के प्रति उनकी अरुचि थी, लेकिन उनका कहना था कि ऐसा करके उन्होंने अपने पिता की इच्छा पूरी की और स्वयं से हार मान ली. पिता और पुत्र के संबंध कटु हो गये थे.

विश्वविद्यालय के दिनों में काफ्का की मुलाकात माक्स ब्रॉड से हुई, जो बाद में काफ्का के अंतरंग मित्र और जीवनीकारी के रूप में विख्यात हुए. विश्वविद्यालय में माक्स ब्रॉड काफ्का से एक वर्ष पीछे थे. जर्मन विद्यार्थियों के लिए प्राहा में विद्यार्थी संघ ने एक अध्ययन और व्याख्यान कक्ष की व्यवस्था की थी, जिसकी बैठकों के दौरान इन दोनों की मुलाकात हुई. यद्यपि विद्यार्थी संघ में सामाजिकी से संबंधित एक अनुभाग था, लेकिन काफ्का और ब्रॉड कला व साहित्य की बैठकों में शामिल होते थे. इन बैठकों के दौरान साहित्य के प्रति उनकी रुचि और दिशा तय हुई.

वह साहित्य को दर्शन की आंख से अपने परिप्रेक्ष्य में देखते थे. अपने जीवन की समस्याओं का हल, पारिवारिक जीवन और परंपरागत धर्म में खोज नहीं सके थे. इसीलिए उनकी रुचि साहित्य में बढ़ी.

कुछ दिनों बाद 1909 में काफ्का ने ब्रॉड को अपने प्रथम उपन्यास **गांव में एक शादी की तैयारियां** का प्रथम अध्याय सुनाया. माक्स ब्रॉड के निबंध तब तक अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगे थे और एक किताब भी प्रकाशित हो चुकी थी. उपन्यास के इस प्रथम अध्याय को सुनकर ब्रॉड बहुत प्रभावित हुए.

अपने मित्र को साहित्यिक क्षेत्र में लाने के लिए सबसे पहले ब्रॉड ने एक सीधा तरीका अपनाया. बर्लिन के एक साप्ताहिक पत्र **दि गर्गेन वार्ट** के एक लेख में उन्होंने कई महत्वपूर्ण लेखकों, मसलन टॉमस मान और वेडेकाइंड की श्रेणी में काफ्का को स्थान दिया. दिलचस्प बात तो यह थी कि तब तक काफ्का की कोई भी रचना प्रकाशित नहीं हुई थी. कुछ महीनों बाद ही फ्रैंज बैली के संपादन में निकलने वाली पत्रिका **हाइपेरियन** तथा प्राहा के दैनिक अखबार **बोहेमिया** में उनकी कुछ रचनाएं प्रकाशित हुईं. ब्रॉड के प्रयत्नों से ही यह सब संभव हो सका.

1906 में काफ्का ने जर्मन विश्वविद्यालय से न्याय-शास्त्र में डाक्टरेट प्राप्त की. तत्पश्चात एक अनिवार्य वर्ष के लिए न्यायालय में काम करते रहे. इन्हीं दिनों एक बार उनका मन कानून को व्यवसाय के रूप में अपनाने को हुआ, लेकिन वह निर्णय नहीं ले सके. उनके लिए साहित्य को व्यवसाय के रूप में अपनाने का प्रश्न ही नहीं उठता था. यदि वह अपने लेखन से जीवकोपार्जन करने में सक्षम भी होते, तब भी वह शायद ऐसा नहीं करते. माक्स ब्रॉड की सहायता से वह किसी ऐसे बड़े संस्थान में नौकरी की तलाश करने लगे, जहां केवल दो से आठ बजे तक काम होता हो, ताकि बाकी समय का उपयोग वह पढ़ने-लिखने, घूमने और प्रेक्षागृहों में जाने में लगा सकें. ऐसी नौकरी सिर्फ सरकारी कार्यालयों में ही मिल सकती

थी. काफी दौड़-धूप के बाद आखिरकार जुलाई 1908 में काफ्का को श्रमिक जीवन बीमा संस्थान में क्लर्क की नौकरी मिल गयी. काफ्का की शक्ति कार्यालय में इतनी खप जाती थी कि वह कोई रचनात्मक लेखन नहीं कर पाते थे. कुछ दिन तक तो काफ्का मध्याह्न में सोते और रात में लिखते रहे थे.

काफ्का ने अपनी डायरी और पत्रों में इस बात का बेहद संवेदनशील उल्लेख किया है कि वह किस तरह की यातनादायक स्थितियों में रहने के लिए मजबूर थे. तनाव के इन्हीं दिनों में वे अपने जीवन को दिशा-निर्देश देने वाले दर्शन के निर्माण में लगे रहे. काफ्का की सूक्तियों से यह निष्कर्ष निकलता है कि काफ्का का साहित्य, दर्शन का एक विशेष अंग है. काफ्का के लिए लिखना एक अनिवार्यता थी, क्योंकि वह अपनी जिंदगी से जुड़ी समस्याओं का हल साहित्य में खोजना चाहते थे.

छुट्टी के दिनों में वह प्रायः ब्रॉड के साथ सैर सपाटे, तैरने और नहाने के लिए जाया करते थे. 1909 में वे दोनों रीवा गये. वहां पर उन्हें एक स्थानीय अखबार से पता लगा कि ब्रेसिका में पहली हवाई उड़ान होने वाली है. अब तक उन्होंने हवाई जहाज नहीं देखा था. वे इस हवाई उड़ान को देखने के लिए ब्रेसिका गये. यह घटना इस बात का प्रमाण है कि वह हर नयी और विशिष्ट चीज को देखने-जानने के लिए कितने लालायित रहा करते थे.

काफ्का का सेक्स जीवन बेहद असंतोषपूर्ण था. किशोरावस्था में काफ्का अपनी शाम खूबसूरत लड़कियों के साथ शराबखाने में व्यतीत करते थे. ब्रॉड के अनुसार एक बार काफ्का शराबखाने में शराब बेचने वाली हंसी नामक लड़की के प्रेम में दीवाने हो गये थे.

1912 में ब्रॉड और काफ्का गेटे के शहर बैमार गये. इन दोनों ने गेटे को एक साथ पढ़ा था. गेटे के प्रति काफ्का की दिलचस्पी अभूतपूर्व थी. इसलिए उनके लिए गेटे के शहर की यात्रा का अनुभव कुछ दूसरा ही था.

रास्ते में वे लाइपजिग रुके, जहां ब्रॉड ने काफ्का की मुलाकात अर्नेस्थ रोहाल्य और कुर्थबोल्फ नामक प्रकाशकों से करवायी. ब्रॉड अपने मित्र की पुस्तक के प्रकाशन के लिए बेहद उत्सुक थे, लेकिन काफ्का इस विषय में काफी उदासीन थे. प्रकाशक काफ्का की पुस्तकें प्रकाशित करने को राजी हो गया. उसने काफ्का को सलाह दी कि वे अपनी पांडुलिपियों को व्यवस्थित करें. प्राहा लौटने पर काफ्का ने अपनी सूक्तियां, डायरियां तथा शुरू की कहानियों की पांडुलिपियों को इकट्ठा किया. जब वह इन पांडुलिपियों का संयोजन कर रहे थे तो अचानक उन्हें ऐसा महसूस हुआ कि उनकी सारी रचनाएं कूड़ा हैं, ब्रॉड ने इसका विरोध किया और अपने तर्कों द्वारा काफ्का को समझाने की कोशिश की. आखिरकार एक छोटी-सी किताब के योग्य सामग्री जुट गयी, जिसका प्रकाशन 1913 में हुआ. मोटे टाइप में छपी 99 पृष्ठों की इस पुस्तक का नाम था—**मेडीटेशन**

ऐसा प्रतीत होता है कि पहली पुस्तक के प्रकाशन के बाद काफ्का की रचना शक्ति का सोता फूट पड़ा. इसी वर्ष काफ्का ने अपनी एक छोटी कहानी **फैसला** पूरी की. यही नहीं, **अमेरिका** नामक प्रथम उपन्यास पर काम करना भी शुरू किया तथा अपने जीवन की सर्वश्रेष्ठ कहानी **मेटामारफॉसिस** लिखी.

1913 की गर्मियों में काफ्का की मुलाकात बर्लिन की एक लड़की फेलिस वायर से हुई, जिसके प्यार में वे बेतहाशा डूब गये. वह बर्लिन लौट गयी, लेकिन इन दोनों के बीच पत्र-व्यवहार चलता रहा. शुरू में तो फेलिस काफ्का के प्रेम का बराबर प्रतिदान देती रही, लेकिन वह एक व्यावसायिक लड़की थी. उसे इस बात का एहसास बहुत जल्दी हो गया कि फ्रैंज काफ्का उसके लिए एक, अच्छा पति साबित नहीं हो सकता. सो अचानक एक दिन फेलिस ने उससे संबंध तोड़ लिया.

विश्वयुद्ध के बाद जब काफ्का अपनी बहन के साथ बाल्टिक सागर तट पर रह रहे थे, तभी उनकी मुलाकात डोरा डाइमॉट से हुई. डोरा बर्लिन के यहूदी जनतागृह के रसोईघर में काम करती थी. उस समय डोरा की आयु मुश्किल से 20 वर्ष की रही होगी और वह एक संपन्न पोलिश यहूदी परिवार की थी. उसने अपना घर इसलिए छोड़ दिया था, क्योंकि वह इस संसार में अपना रास्ता खुद खोजना चाहती थी.

काफ्का हिब्रू पढ़ रहे थे और डोरा हिब्रू की विद्वान थी. उनकी पहली बातचीत का विषय भाषा विज्ञान था. काफ्का की दिलचस्पी डोरा में गहराती गयी और उन्होंने शीघ्र ही डोरा के साथ बर्लिन में रहने और प्राहा को हमेशा के लिए छोड़ देने का फैसला कर लिया. काफ्का को जीवन में पहली बार शांति महसूस हुई और अपने माता-पिता से अंतिम रूप से मुक्ति भी मिल गयी, जिसके लिए वह बचपन से परेशान थे. उन्हें पहली बार गहरी नींद का सुख मिला और वे लिखने भी लगे. लेकिन उनका स्वास्थ्य दिनों-दिन गिरता चला गया. मार्च में उनकी स्थिति बहुत ही खराब हो गयी. माक्स ब्रॉड ने काफ्का के चाचा राबर्ट क्लोपस्टोक को इसकी जानकारी दी, जो एक डाक्टर थे. काफ्का को प्राहा लाया गया. साथ में डोरा भी आयी. उनका स्वास्थ्य और भी गिर गया. इसलिए उन्हें वियना के जंगल में स्थिति एक सेनेटोरियम ले जाया गया. सेनेटोरियम के डाक्टरों ने जांच की और बताया कि उनके स्वरयंत्र में टी. बी. हो गयी है और उन्होंने काफ्का को वियना अस्पताल भेज दिया.

वियना अस्पताल की व्यवस्था बहुत अच्छी नहीं थी. अप्रैल के अंत में डोरा और डाक्टर चाचा क्लोपस्टोक ने प्रयत्न करके काफ्का को वियना के बाहर स्थित कियरलिंग अस्पताल में स्थानांतरित करवा लिया. इन दिनों काफ्का को बेहद दर्द होने लगा था. कुछ डाक्टरों ने डोरा को सलाह दी कि वह इन्हें प्राग ले जाये, क्योंकि अब यहां इस बीमारी को ठीक करना उनकी सामर्थ्य के बाहर है. उनकी असह्य पीड़ा को दूर करने के लिए डाक्टरों के पास अब केवल मार्फिया के इंजेक्शन ही बचे थे. काफ्का के डाक्टर चाचा क्लोपस्टोक ने उनकी देखभाल के लिए अपनी नौकरी छोड़ दी थी और काफ्का की मृत्यु तक साथ रहे. □

● **प्रस्तुति : बलराम**

अगला अंक

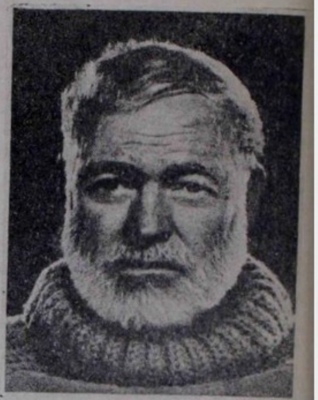

अर्नेस्ट हेमिंग्वे विशेषांक

मोहन राकेश, दुष्यंत कुमार, यशपाल, ताल्स्तोय, रेणु, मंटो, चेखव, सार्त्र, काफ्का–

देश-विदेश के प्रमुख रचनाकारों के कृतित्व और व्यक्तित्व की जानकारी से भरपूर विशेषांकों की समृद्ध परंपरा में––

दूसरे विश्वयुद्ध की भयावहता में आम जिंदगी की यातना को स्वर देने वाले प्रख्यात अमरीकी लेखक हेमिंग्वे के जन्म दिवस के अवसर पर हिंदी में पहली बार—

अर्नेस्ट हेमिंग्वे विशेषांक...

–लेखन में लेखक जितना आगे जायेगा, उतना ही अकेला होता जायेगा !

हेमिंग्वे से जार्ज प्लिपटन की लंबी बातचीत. साथ में अनेक ऐसे चित्र जिन्हें हिंदी पाठक पहली बार देख सकेंगे.

हेमिंग्वे : एक उद्दाम व्यक्तित्व

–– उसने लेखन के क्षेत्र में छलांगें लगायी थीं : हरिमोहन शर्मा द्वारा हेमिंग्वे के पूरे जीवन पर एक दृष्टि.

– पापा हेमिंग्वे और उनके हत्यारे!

क्या वजह थी कि हेमिंग्वे ने खुद को गोली मारकर खुदकुशी कर ली? : रचनाकार हेमिंग्वे के अंतरंग की कहानी.

– एक मूर्ति से गुडबॉय करते हुए!

—क्या हेमिंग्वे सेक्स के मनोभावों पर अत्यधिक बल दे रहा था?—औरान लैथम की विचारोत्तेजक टिप्पणी.

– व्हिस्की की छह बोतलें और हेमिंग्वे के छह सबक !

कैसे बनता है कोई सभ्य व्यक्ति?—विश्व प्रसिद्ध व्याख्याता लेडरर का विश्लेपण.

– हेमिंग्वे का महिला संसार

– एक अधूरा साक्षात्कार

किताबें बातें तो नहीं कर सकतीं... हेमिंग्वे का अंतिम दिन और मैं! —हेमिंग्वे के निधन के बाद उनकी चौथी और अंतिम पत्नी **मेरी वेल्श** से बातचीत.

▣ हेमिंग्वे के विश्व प्रसिद्ध उपन्यास––'ए फेयरवेल टू आर्म्स' और 'फार हूम द बेल टाल्स' का सारगर्भित कथासार और उसकी मशहूर कहानी 'हत्यारे' का अविकल हिंदी रूपांतरण.

नोबेल पुरस्कार विजेता उपन्यास 'ओल्ड मैन एंड द सी' के कुछ महत्वपूर्ण अंश और उपन्यास के प्रभाव पर एक पाठकीय टिप्पणी, साथ में उस क्षण की चश्मदीद तस्वीर, जब हेमिंग्वे को नोबेल पुरस्कार मिला.

अन्य आकर्षण

● लेखन मेरे लिए एक शिल्प है ● दुलारा पति ● कहानियों के कथानक कहां से आते हैं ● सबसे पहली पुस्तक ● सेक्स ?...बड़ी हंसी आती है ऐसे लेखकों पर ● आत्मकथा लिखने का विचार मन में नहीं आया ● वह एक पिस्तौल ● एक उपन्यास के अनेक शीर्षक जो सोचे गये ● जब कोर्ट मार्शल होते-होते बचा ● प्रेम, सेक्स, मौत, और हेमिंग्वे! ● युद्ध के मैदान से... यानी ये महज शीर्षक हैं जो हेमिंग्वे को समझने, पढ़ने और उसे अपने चिंतन में उतारने का एक अवसर देते हैं.

▣ हेमिंग्वे की सबसे दुलारी बहन––**सनी**––के मार्मिक संस्मरण.

▣ **शीशे के घरों का गीत**

हेमिंग्वे के रचनात्मक अहसासों के प्रभाव में लिखी गयी भारतीय अंग्रेजी कहानी—**राजन जैड**

'भरी दोपहर मौत' और 'सिपाही' आदि कई कहानियां और दुर्लभ चित्रों सहित दस्तावेजी सामग्री जो इतनी आसानी से केवल डेढ़ रुपये में 'सारिका' ही उपलब्ध करा सकती है.

सारिका

जुलाई ८०; अंक–एक

अपने एजेंट को आज ही बता दीजिए कि आपको कितनी प्रतियां चाहिए—अपने लिए, दोस्तों के लिए

और अगला ही अंक

कथा सम्राट प्रेमचंद जन्म शताब्दी समारोह के उपलक्ष्य में एक और विशेषांक

- अमृतराय से बातचीत.
- आज प्रेमचंद की जरूरत क्या है?
- प्रेमचंद के बाद किसका नाम लें. . . .या प्रेमचंद को भूल जायें?
- प्रेमचंद भूखे नहीं मरे, भूख के खिलाफ लड़े.
- हिंदी न मुसलमानी : हम हिंदुस्तानी
- उपन्यास सम्राट का खिताब यानी गोदान––एक पुनर्मूल्यांकन
- गोदान की रचना प्रक्रिया का इतिहास
- अगर आज प्रेमचंद जीवित होते तो?
- सफल कथाओं पर असफल फिल्में
- एक निहायत मामूली आदमी की गैरमामूली उपलब्धियों का नाम है––प्रेमचंद

हिंदी तथा उर्दू के जाने-माने लेखकों द्वारा लिखित बेजोड़ लेख, प्रेमचंद के दुर्लभ चित्र, पत्र, डायरी, संस्मरण और कहानियों का अनूठा संग्रह

प्रेमचंद विशेषांक

विस्तृत सूचना अगले अंक में